CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्राकृत विद्या

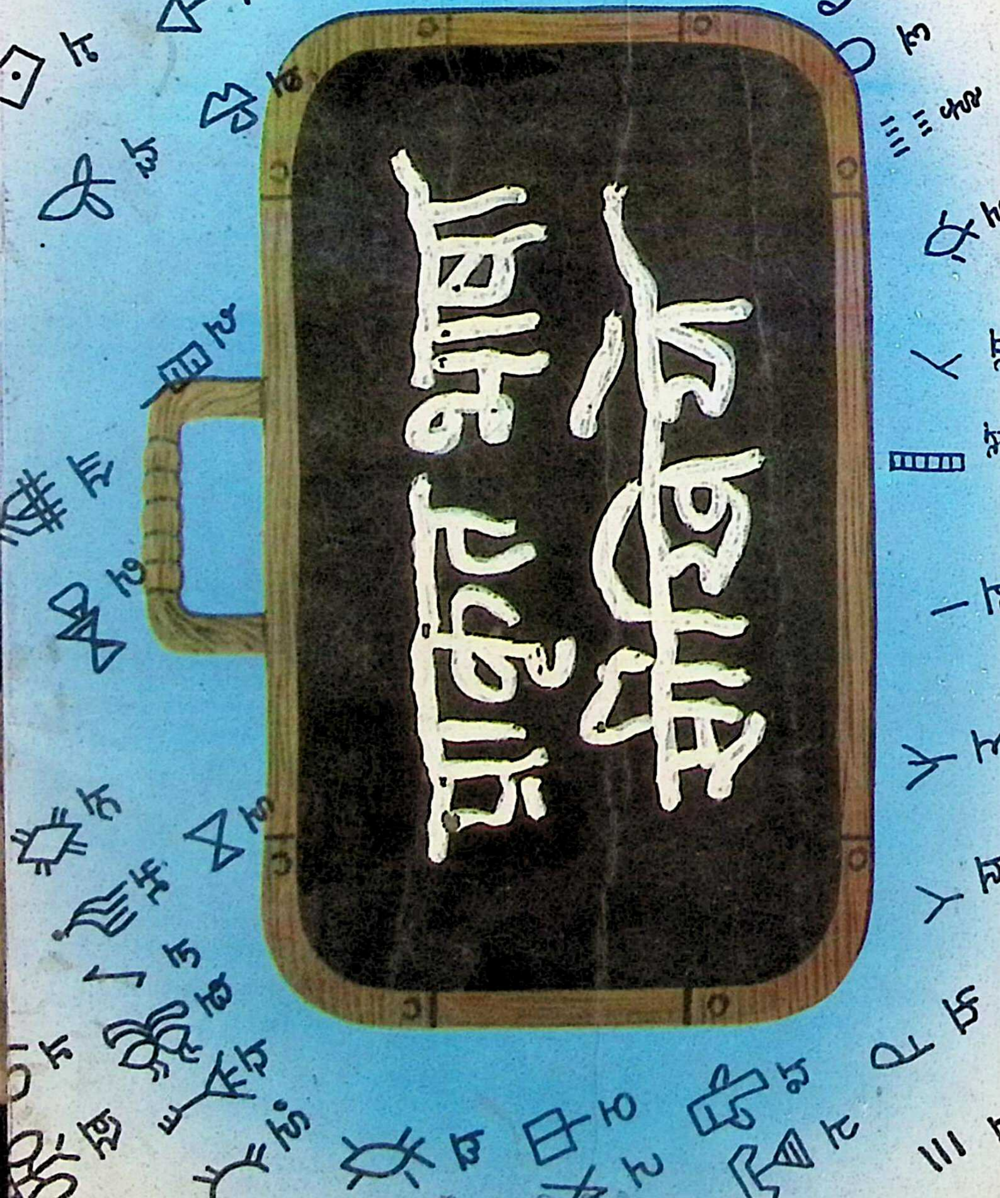

वर्णैः कृतानि चित्रः ....

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आवरण पृष्ठ के बारे में

भारतीय संस्कृति का परिचय पाश्चात्य विद्वानों ने प्राग: 'अनपढ़-गँवारों एवं जंगलियों की संस्कृति' के रूप में दिया गया है; किन्तु सिन्धु घाटी में 'हड़प्पा' एवं 'मो-अन-जो-दड़ो' नामक स्थानों में उत्खनन करने पर जिस सुसभ्य एवं सुसंस्कृत जीवनशैली के प्रतीक पुरावशेष प्राप्त हुये, उनके प्रकाश में आने के बाद सभी को यह स्वीकार करना पड़ा कि 'भारत प्रागैतिहासिक काल से एक सुसभ्य, सुशिक्षित एवं सुसंस्कारित व्यक्तियों का देश रहा है तथा इसकी सांस्कृतिक परम्परा शिक्षा-शांति एवं सहअस्तित्व के परिष्कृत एवं उदार विचारों पर आधारित थी।'

सिन्धु घाटी की सभ्यता पर शोध-खोज करनेवाले बिहार प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी एवं प्रख्यात गवेषी विद्वान् श्री निर्मल कुमार वर्मा ने अपने वर्षों के अथक श्रम एवं गहन शोध के आधार पर प्रमाणित कर दिया है कि 'सिन्धु-सभ्यता की भाषा प्राकृतभाषा थी।' इसका एक प्रमुख प्रमाण यह भी है कि उसमें मिली वर्णमाला में संस्कृत के 'श' एवं 'ष' वर्ण नहीं हैं। यह सुविदित तथ्य है कि प्राकृतभाषा में, विशेषत: शौरसेनी प्राकृत में मूलत: ही 'श' एवं 'ष' वर्णों का अभाव है; उसमें मात्र दन्त्य 'स' ही प्रयुक्त होता है।

आवरण पृष्ठ पर एक स्लेट (लेखन-फलक) पर 'प्राकृतभाषा सीखये' का प्रेरणावाक्य केन्द्रीकृत करके उसके चारों ओर सिन्धु-सभ्यता में प्राप्त वर्णाक्षरों के मूलरूप एवं उनके देवनागरी वर्णाकृतियाँ भी दी गयी हैं। ये वर्णाकृतियाँ बिहार प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ श्री निर्मल कुमार वर्मा की शोधकृति 'Decipherment of Indus Script' से साभार उद्धृत हैं।

—सम्पादक

" 'हड़प्पा' एवं 'मो-अन-ज़ो-दड़ो' में प्राकृतभाषा बोली जाती थी।"

—डॉ० पी०आर०देशमुख-कृत

'इण्डस् सिविलाईजेशन : ऋग्वेद एण्ड हिंदू कल्चर' पुस्तक से उद्धृत
प्रकाशक—आर०बी० स्वामी, सरोज प्रकाशन, रामदास पेठ, नागपुर (महा०)

''प्रकृति: शौरसेनी''

—(वररुचिकृत 'प्राकृतप्रकाश', 10/2, 11/2)

— समस्त प्राकृतों की मूलप्रकृति शौरसेनी प्राकृत है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्राकृत-विद्या

पागद-विज्जा

शौरसेनी, प्राकृत एवं सांस्कृतिक मूल्यों की त्रैमासिकी शोध-पत्रिका

वर्ष 8 | अप्रैल-जून 1996 | अंक 1

मानद प्रधान सम्पादक
डॉ० राजाराम जैन
✶
सम्पादक
डॉ० सुदीप जैन, एम.ए. प्राकृत

सम्पादक मण्डल
डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री
डॉ० प्रेमसुमन जैन
डॉ० उदयचन्द जैन
पं० जयकुमार जैन

प्रबंध सम्पादक : पं० महावीर शास्त्री
(सम्पूर्ण सम्पादन-व्यवस्था पूर्णत: अवैतनिक है।)

प्रकाशक
श्री सुरेश चन्द्र जैन
श्री कुन्दकुन्द भारती (प्राकृत भवन), 18-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110067
दूरभाष : (011) 664510, फैक्स : (011) 6856286
जैन ज्योतिष एवं वास्तुविद्या कार्यालय दूरभाष: 6513138

★ वार्षिक सदस्यता शुल्क – पचास रुपये ★ एक अंक – पन्द्रह रुपये

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अनुक्रम

क्र.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं०
1.	मंगलाचरण 'सोहं'		3
2.	प्राकृतभाषा दिवस पर विशेष		5
3.	सम्पादकीय		6
4.	जैनधर्म की विशेषता	अनन्तशयनम् आयंगर	9
5.	जैन सामाजिक संघटन के चार आयाम	पं० बाहुबलि उपाध्ये	10
6.	भक्त प्रत्याख्यान : सल्लेखना	आचार्य विद्यानन्द मुनि	14
7.	वाचक-वाच्य नियोग	मुनि कनकोज्ज्वलनंदि	18
8.	कुन्दकुन्द-साहित्य में प्रयुक्त छन्द	डॉ० उदयचंद्र जैन	23
9.	अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थ	प्रो० राजाराम जैन	32
10.	प्रेरक व्यक्तित्व : डॉ. मण्डन मिश्र	डॉ० सुदीप जैन	40
11.	प्राकृतवाणी की पुकार	सुभाषचन्द्र अक्कोळे	46
12.	लेश्यासिद्धान्त : स्वरूप एवं महत्त्व	श्रीमती अमिता जैन	50
13.	विद्यानन्द-शतकम्	उपाध्याय कामकुमारनन्दि	58
14.	मूलाराधना में प्रतिबिंबित अहिंसातत्त्व	डॉ० बी०के० खडबडी	60
15.	समयसार के पाठ	डॉ० सुदीप जैन	66
16.	जैनदर्शन में तीर्थक्षेत्र.......	डॉ० दयाचन्द्र साहित्याचार्य	72
17.	कुन्दकुन्द के एक दृष्टान्त पर विचार	प्रो० एम०डी० बसन्तराज	78
18.	पुस्तक-समीक्षा		85
19.	अभिमत		88
20.	समाचार दर्शन		92

"नामाख्यातोपसर्गेषु, निपातेषु च संस्कृता।
प्राकृती *शौरसेनी* च, भाषा यत्र त्रयी स्मृता।।"

—आचार्य रविषेण, 'पद्मपुराण', 24/11

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मंगलाचरण

"सोहं..."

णिच्चोऽसंखपदेसो तणुमेत्तो णाणदंसणसरूवो।
णिरघोऽमुत्तो सिद्धो परमपदं होदि जो सोहं।। 1।।

अर्थ:—जो नित्य है, असंख्यातप्रदेशी है, प्राप्त शरीरप्रमाण है, ज्ञान-दर्शनस्वरूपी है, पापरहित है, अमूर्तिक है, सिद्ध है, परमपद है – ऐसा जो कोई है; वही मै हूँ।

णिस्सो णिव्वुदिमग्गो णिव्वाणो णिक्कलो णिरारंभो।
णिच्चिंतो णिद्दंदो णिरंजणो होदि जो सोहं।। 2।।

अर्थ:—जो परिग्रह से रहित है, शांति का साधन है, मोक्षस्वरूपी है, शरीर से रहित है, पापरूपी आरंभ से रहित है, चिंताविमुक्त है, निर्द्वन्द्व है, निरंजन है – ऐसा जो कोई है, वही मैं हूँ।

कायाकारोऽकाओ कंखारहिदो कसायणिम्मुक्को।
कम्मकलंकातीदो कवित्थुदो होदि जो सोहं।। 3।।

अर्थ:—जो प्राप्त शरीर के आकारवाला होने पर भी अशरीरी है, आकांक्षारहित है, क्रोधादि कषायों से नितान्त मुक्त है, ज्ञानावरणादि कर्मों के कलंक से रहित है, (वीतरागता के गायक) कवियों के द्वारा संस्तुत है—ऐसा जो कोई भी है, वही मैं हूँ।

पंचविरहिदो पंचमभावमयो पगडिदप्प-सब्भावो।
परमेट्ठी पररहिदो परमप्पा होदि जो सोहं।। 4।।

अर्थ:—जो मिथ्यात्वादि पाँच बंधकारणों से रहित है, परमपारिणामिक नामक पंचमभाव से युक्त है, प्रकटित आत्मस्वभाववाला है, परमेष्ठी है, पर से रहित है, परमात्मा है—ऐसा जो कोई भी है, वही मैं हूँ।

दव्वत्थिकाय-तच्च-पदत्थे छ-प्पंच-सत्त-णवभेदे।
सारो तिहुवणसारो स-समयसारो हु जो सोहं।। 5।।

अर्थ:—छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, और नवपदार्थों के इन सब भेदों में जो सारभूत वस्तु है; जो कि तीनों लोकों में भी सारभूत है—ऐसा निज (कारण) समयसाररूप जो कोई है, वही मैं हूँ।

विरहिदमग्गणठाणो-गुणठाणो-जीवठाणसंठाणो।
किदकिज्जो जीवघणो अट्ठगुणो होदि जो सोहं।। 6।।

अर्थ:—जो मार्गणास्थान, गुणस्थान, जीवस्थान (जीवसमास) एवं संस्थान (संहनन आदि) —इत्यादि से रहित है, कृतकृत्य है, चैतन्यघन-स्वरूपी है, सम्यक्त्वादि

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अष्टगुणमय है – ऐसा जो कोई है, वही मैं हूँ।

णिग्गंथो णिस्सल्लो णिद्दोसो सत्तभंगसब्भावो।
बंधोदयादि-रहिदो अणाहदो होदि जो सोहं।। 7।।

अर्थः—जो निर्ग्रन्थ है, मिथ्यात्वादि शल्यों से रहित है, निर्दोष है, सप्तभंगस्वभावी है, बंध एवं उदय आदि से रहित है, अनाहत है – ऐसा जो कोई भी है, वही मै हूँ।

णिच्चाणंदो परमाणंदो णियजणिद-णिब्भराणंदो।
विमलचिदाणंदो सहजाणंदो होदि जो सोहं।। 8।।

अर्थः—जो नित्यानन्दस्वरूपी है, परमानंदमय है, आत्मजनित आनन्द का निर्भर (पुंज) है, निर्मल चिदानन्दमय है, सहजानन्दरूप है – ऐसा जो कोई है, वही मैं हूँ।

तियरण-परिसुद्धो होदि जो जोगभत्तिं,
करिवि सहजसिद्धाराहणा-संपजुत्तं।
चरदि जिणवराणं मग्गदो लद्धबुद्धिं,
स लहदि णियतच्चे मक्ख साणंदठाणं।। 9।।

अर्थः—जो व्यक्ति (अधःप्रवृत्तकरण आदि) तीन करणों से परिशुद्ध होता हुआ योगभक्ति को करके सहज सिद्धत्व की आराधना से संप्रयुक्त होता है; वह सद्ज्ञानी जीव जिनेन्द्र परमात्मा के मार्ग पर चलता हुआ शीघ्र ही निज शुद्धात्मतत्त्व में (अविनाशी) आनंदमय स्थान को प्राप्त करता है। ✶✶

सम्पादकीय टिप्पणी—उपरिमुद्रित शौरसेनी प्राकृत-निबद्ध काव्य का नाम **'नित्यानन्दाष्टक'** है। इसके कर्ता अज्ञात हैं। इसकी कुछ प्रतियाँ श्रीमती रमारानी जैन शांध संस्थान, मूड़बिद्री के ताड़पत्रीय ग्रन्थागार में विद्यमान हैं। जिनमें कुछ प्रतियों में यह कन्नड़ टीकासहित है, तो कुछ में मूलमात्र है। कन्नड़ टीका के कर्त्ता संभवतः मुनि बालचन्द्र अध्यात्मी हैं, जिन्होंने समयसारादि परमागमों एवं योगीन्द्रदेवकृत 'अमृताशीति' की कन्नड़ टीका की है। अन्तिम पद्य की टीका में **"बालचन्द्रोज्ज्वलकीर्त्तिपूर्व्वकनित्यानंद निःश्रेयसश्रियं'** कहकर उन्होंने अपना नाम संकेतित किया है। किसी भी प्रति में मूलकर्त्ता का नाम नहीं है।

मेरी अपनी जानकारी में यह काव्य पूर्णतया अप्रकाशित है। इसे मूड़बिद्री की ताड़पत्रीय प्रतियों में पाठान्तर करके मैंने सम्पादित किया तथा इसकी टीकासहित-प्रति शीघ्र ही प्रकाशित होगी। सर्वप्रथम 'प्राकृतविद्या' के प्रबुद्ध पाठकों को यह अध्यात्मतत्त्वमय अष्टक (कुल नौ पद्य, 8 गाथा + 1 मालिनी) काव्य प्रस्तुत किया जा रहा है। यह मेरी मौलिक शोध से प्राप्त कृति है। इसे बिना अनुमति पूर्णतः या आंशिकरूप से प्रकाशित करना नियमविरुद्ध है। —सम्पादक

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

श्रुतपञ्चमी : प्राकृतभाषा दिवस पर विशेष

◎ "सुदतित्थं धम्मवट्टणहेदू" –(*तिलोयपण्णत्ति, 1423*)

अर्थः–श्रुतरूपी तीर्थ धर्म की प्रवर्तना का प्रबल कारण है

◎ "ज्येष्ठ-सितपक्ष-पञ्चम्यां चातुर्वर्ण्य संघ-समवेतः।
तत्पुस्तकोपकरणैर्व्यधात् क्रियापूर्वकं पूजाम्।।
श्रुतपञ्चमीति तेन प्रख्यातिं तिथिरियं परामाप।
अद्यापि येन तस्यां श्रुतपूजां कुर्वते जैनाः।।"

–(*आ० इन्द्रनन्दि, श्रुतावतार, 143-144*)

अर्थः–ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमी के दिन चतुर्विधसंघ ने समवेतरूप से क्रियाविधिपूर्वक परमागम की पूजा की थी। इसीकारण यह पवित्र तिथि 'श्रुतपंचमी' के रूप में लोकप्रसिद्ध हुई। आज भी जैन धर्मानुयायी श्रावक उस दिन भक्तिभाव से श्रुत-शास्त्र की पूजा-अर्चना एवं स्वाध्यायविधि करते हैं।

◎ सिद्ध-श्रुतयोर्भक्ती श्रुतपञ्चम्यां तु वाचना।
स्वाध्यायः शान्तिभक्त्यन्तमस्य निष्ठापनं ततः।।
एतत्सन्यास-प्रारम्भे शान्तिभक्तिर्नहीह तु।
श्रुतपञ्चमीक्रिया स्यादस्य निष्ठापने पुनः।।

–(*आचारसार, 8/64-65*)

अर्थः–श्रुतपञ्चमी के दिन 'सिद्धभक्ति' और 'श्रुतभक्ति' करनी चाहिए। तदनन्तर 'वाचना' नामका स्वाध्याय करना चाहिए। स्वाध्याय का समापन शान्ति भक्तिपूर्वक करना चाहिए।

श्रुतपञ्चमी के दिन जो (पूर्वोक्त) क्रिया होती है, वही क्रिया मुनि को दीक्षा देने के प्रारम्भ में की जाती है। दोनों में मात्र यह अन्तर है कि मुनिदीक्षा में 'शान्तिभक्ति' नहीं की जाती है।

◎ 'का वाचना? शिष्याध्यापनं वाचना, तत्थ परेसिं वक्खाणं वायणा णाम।'

–(*धवला, पुस्तक 13, पृ० 9*)

अर्थः–'वाचना' किसे कहते हैं? शिष्यों को पढ़ाना ही 'वाचना' है। दूसरों (शिष्यों) के लिए व्याख्यान देना ही 'वाचना' है। ✶✶

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सम्पादकीय

जय सियाराम

–डॉ० सुदीप जैन

आज विश्व के प्राचीनतम लिखित साहित्य के रूप में 'ऋग्वेद' को विद्वानों ने एकमत से मान्यता दी है। 'ऋग्वेद' की भाषा को 'छान्दस्' नाम दिया गया है। विद्वान् स्वीकार करते हैं कि 'वैदिक युग में कोई जनभाषा अवश्य थी, जिससे साहित्यिक छान्दस् भाषा विकसित हुई।' वह जनभाषा कौन सी थी? –यह तथ्य आज भी विचारणीय बना हुआ है। सिन्धु सभ्यता के प्राचीन अभिलेखों के आधार पर विद्वानों ने सिद्ध कर दिया है कि सिन्धु सभ्यता के युग में प्राकृतभाषा ही वाग्व्यवहार एवं लेखन की भाषा थी। इस प्राकृत के बारे में डॉ० हरिदेव बाहरी लिखते हैं–"प्राकृत से वेद की साहित्यिक भाषा का विकास हुआ, प्राकृत से संस्कृत का भी विकास हुआ और प्राकृत से ही इनके अपने साहित्यिकरूप भी विकसित हुये।" किन्तु उस प्राचीन प्राकृतभाषा का स्वरूप क्या था? –यह कहना कठिन है। कम-से-कम आज साहित्यिकरूप में प्राप्त विभिन्न प्राकृतों से तो वह निश्चित ही भिन्न रही होगी। उसी से 'छान्दस्' जैसा साहित्यिकरूप विकसित हुआ–इसमें कोई विरोध नहीं है, किन्तु प्राकृत का साहित्यिक स्वरूप 'छान्दस्' की अनुकृति करके निर्मित किया गया है। अत: जैसे लौकिक संस्कृत का विकास 'छान्दस्' से हुआ है, उसीप्रकार 'छान्दस् युग' में ही प्राकृतभाषा के साहित्यिक स्वरूप का भी निर्माण हुआ है; अत: हम लौकिक संस्कृत एवं साहित्यिक प्राकृत को 'सहोदरा' कह सकते हैं।

ये दोनों भाषायें भारतीय सांस्कृतिक चेतना के संवाहक भाषारूपी रथ के युगलचक्र हैं। इन दोनों के साहित्य में भारतीय दार्शनिक-सांस्कृति एवं आध्यात्मिक चेतना के अनेकों मनोरम चित्र उस युग में अंकित हुए हैं, जब विश्व में भाषा एवं संस्कृति का विकास अपने शैशवकाल में था। अत: विश्व-साहित्य के इतिहास में संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं के साहित्य को प्राचीनतम एवं श्रेष्ठतम साहित्य के रूप में परिगणित किया जाता है। इन दोनों भाषाओं ने भारतीय जनजीवन को पूर्ण अभिव्यक्ति देने के उद्देश्य से दो अलग-अलग उत्तरदायित्वों का चयन किया। जहाँ शिष्टवर्ग की मर्यादित एवं अनुशासित कार्यविधियों को संचालित करने का काम 'संस्कृत' ने संभाला, ताकि इस विशाल राष्ट्र के 'कोस-कोस पर बदले पानी, तीन कोस पर बानी' के परिवर्तनशील स्वरूप में क्षेत्र एवं काल का भेद होने पर भी

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सन्देशों में शब्द एवं अर्थ की सुनिश्चित एकरूपता का निर्माणकर उनकी व्यापक क्षेत्रगत एवं कालगत उपादेयता बनायी जा सके; वहीं जनजीवन के बहुरंगी व्यक्तित्व एवं भाषा के गतिशील-स्वरूप को जीवित रखने का दायित्व 'प्राकृतभाषा' ने संभाला, ताकि जनसामान्य के मध्य साहित्य की उपादेयता अक्षुण्ण बनी रह सके। यह भारतीय भाषाशास्त्रियों एवं मनीषियों का एक सुचिंतित एवं सुनियोजित प्रयोग था, जो आशातीत ढंग से सफल रहा।

किन्तु इस देश पर अतिप्राचीनकाल से सांस्कृतिक आक्रमण होते रहे हैं। पहिले शक-हूण-कुषाण आदि आये, फिर यवन आये, तत्पश्चात् मुगलों के कई शताब्दियों तक निरन्तर सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना को झकझोरनेवाले प्रहार हुए; अन्ततः पोर्तगीज और अंग्रेज भी आये। यह इस देश की विशेषता रही कि जो भी आया, अन्ततः यहीं का होकर रह गया, यहीं के रंग में रंग गया। किन्तु उनमें से कुछ विघ्नसन्तोषियों को भारत की सांस्कृतिक एवं भाषिक चेतना का यह सौहार्दपूर्ण व्यवहार सहन नहीं हुआ, अतः उन्होंने समय-समय पर इसके अमृतोपम सौहार्द में सांप्रदायिक, भाषिक एवं अन्य अनेकों बिन्दुओं को लेकर ज़हर घोलने की चेष्टायें कीं। कभी कहा कि "प्राकृत जैनों की भाषा है, तो संस्कृत ब्राह्मणों की।" तो क़भी कहा कि "संस्कृत विद्वानों की भाषा है एवं प्राकृत औरतों-बच्चों-मूर्खों की भाषा है।" -इन बातों के कहीं-कहीं क्षणिक प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुये; किन्तु भारतीय सहिष्णुतापूर्ण सांस्कृतिक चेतना के संवाहक ऋषियों, मुनियों और मनीषियों ने अपने कृतित्व के माध्यम से ऐसे अनर्गल प्रचार का मुँहतोड़ उत्तर दिया।

जहाँ वैदिक ऋषियों ने वेदों में प्राकृत शब्दों का प्रयोग करके इस भावी दुष्प्रचार का उत्पत्तिपूर्व निदान किया; वहीं भास, कालिदास जैसे संस्कृत के महाकवियों ने अपने नाटकों में प्राकृतभाषा को अत्यधिक स्थान देकर इस भेदनीति का निराकरण किया। यही नहीं संस्कृत के मनीषियों ने ब्राह्मण संस्कृति के पूज्य पुरुषों नारायण श्रीकृष्ण (मल्लपुराण, 3/12), स्वयम्भू ब्रह्मा (पाणिनीय शिक्षा, 3) गर्गादि सप्तर्षियों (वाराही संहिता, 86/3) के द्वारा संस्कृत के साथ-साथ प्राकृतभाषा का भी समानरूप से प्रयोग करने का उल्लेखकर इस भाषिक सौहार्द को सुदृढ़ किया।

तथा यह तो कहना ही उगे हुए सूर्य को दीपक दिखाना है कि 'जैनाचार्यों एवं मनीषियों ने भी प्राकृत के अतिरिक्त संस्कृतभाषा को भी पूर्ण सम्मान एवं अपनत्व के साथ प्रयोग में अपनाया है।' आचार्य वीरसेन स्वामी ने 'धवला' एवं 'जयधवला' जैसे कालजयी टीकाग्रन्थों में संस्कृत-प्राकृत दोनों भाषाओं का युगपत् प्रयोग करके

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इस सुसंगति को अलंकृत किया है-

"प्राय: प्राकृतभारत्या क्वचित्संस्कृतमिश्रया।
मणिप्रवालन्यायेन प्रोक्तोऽयं ग्रन्थविस्तरः।।"

इसमें संस्कृत एवं प्राकृत के युगपत् प्रयोग को 'मणिप्रवाल न्याय' की सुन्दर एवं सार्थिक उपमा प्रदान की है।

आज भी जैनसमाज की महिलाओं एवं बच्चों द्वारा संस्कृतभाषा निबद्ध स्तुतिकाव्य घर-घर में गाये जाते हैं। इस बारे में एक प्रसंग उल्लेखनीय है। महामहिम राष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा जी ने 'बावनगजा महोत्सव' के समय जैनसमाज की वृत्ति का परिचय देते हुए कहा था कि "उनके पिताश्री के पास भोपाल में अनेकों जैन महिलायें और बच्चे संस्कृत के 'भक्तामरस्तोत्र' जैसे संस्कृत काव्यों को पढ़ने नियमितरूप से आया करते थे।" -इस प्रकार ब्राह्मणसमाज में में जिस बाल-स्त्रीवर्ग में संस्कृत का प्रवेश प्राय: निषिद्ध था, जैनसमाज ने समाज के इस वर्ग में भी संस्कृतभाषा का प्रसार कराया और संस्कृत का प्रसारक्षेत्र अतिव्यापक बना दिया है।

संस्कृत-प्राकृत की यह सौहार्दपूर्ण युति अत्यन्त प्राचीनकाल से भारतीय जनमानस में घर किये हुए है। आज भी ग्रामीण जीवन में पारस्परिक अभिवादन के समय 'जय सियाराम' का उच्चारण किया जाता है। इनमें 'सिया' शब्द 'सीता' का प्राकृतरूप है, जबकि 'राम' शब्द संस्कृत है। जनजीवन में प्राकृत एवं संस्कृत को कभी भेदभाव की दृष्टि से नहीं देखा गया - यह इस बात का प्रबल प्रमाण है। इससे स्पष्ट है कि अनेकों षड्यन्त्रों के बाद भी भारतीय जनता के मन में संस्कृत-प्राकृत के बीच भेदभाव के बीज रोपने में न कोई सफल हो सका है और न हो सकेगा।

जब तक काव्यानुशासनकार के ये वचन "अकृत्रिम-स्वादुपदां जैनीं वाचमुपास्महे" (काव्यानुशासन, पृष्ठ 1) अर्थात् 'अकृत्रिम एवं कर्णमधुर प्राकृतभाषा की मैं उपासना करता हूँ' - जैसे वचन संस्कृतजनों के हृदय में तथा 'भक्तामरस्तोत्र' जैसे संस्कृतकाव्यों की पंक्तियाँ प्राकृतप्रेमियों के हृदय में आदरपूर्वक गुंजायमान हैं - कोई भी विघ्नसंतोषी भारत के भाषिक सौहार्द को, संस्कृत-प्राकृत के अपनत्व को खंडित नहीं कर सकता है।

संस्कृत एवं प्राकृत के दो पहियों पर भारतीय भाषा-संस्कृति-चेतना का रथ आज तक सौहार्दपूर्वक चलता आया है, और चलता रहेगा।

**

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जैनधर्म की विशेषता

–अनन्तशयनम् आयंगर
पूर्व लोकसभाध्यक्ष

"भारत के महान् सन्तों, जैसे जैनधर्म के तीर्थंकर ऋषभदेव एवं भगवान् महावीर के उपदेशों को हमें पढ़ना चाहिए। आज उन्हें अपने जीवन में उतारने का सबसे ठीक समय आ पहुँचा है। क्योंकि जैनधर्म का तत्त्वज्ञान 'अनेकान्त' (सापेक्ष्य पद्धति) पर आधारित है और जैनधर्म का आचार 'अहिंसा' पर प्रतिष्ठापित है। जैनधर्म कोई पारस्परिक विचारों, ऐहिक व पारलौकिक मान्यताओं पर अन्धश्रद्धा रखकर चलनेवाला सम्प्रदाय नहीं है; वह मूलत: एक विशुद्ध वैज्ञानिक धर्म है। उसका विकास एवं प्रसार वैज्ञानिक ढंग से हुआ है। क्योंकि जैनधर्म का भौतिक विज्ञान और आत्मविद्या का क्रमिक अन्वेषण आधुनिक विज्ञान के प्रमुख सिद्धान्तों से समानता रखता है। जैनधर्म ने विज्ञान के सभी प्रमुख सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन किंया है; जैसे कि पदार्थविद्या, प्रणिशास्त्रा, मनोविज्ञान, काल, गति, स्थिति, आकाश एवं तत्त्वानुसंधान आदि। श्री जगदीश चन्द्र बसु ने वनस्पति में जीवन के अस्तित्व को सिद्धकर जैनधर्म-स्वीकृत वनस्पतिकायिक जीवों के चेतनत्व को प्रमाणित किया है।

जैनधर्म की विशेषता एवं महानता अनेकान्त एवं अहिंसा के सर्वांगीण विवेचन पर प्रतिष्ठित है।"

(मुनि सुशील कुमार जी द्वारा लिखित 'जैनधर्म' नामक पुस्तक, जो कि अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस भवन, 12 लेडी हार्डिंग रोड, नई दिल्ली से सन् 1985 ई० में प्रथम बार प्रकाशित हुई थी, उसी की प्रस्तावना तत्कालीन लोकसभाध्यक्ष सुविख्यात विचारक मनीषी श्री अनन्तशयनम् आयंगर जी ने लिखी थी। उसी प्रस्तावना से उपरिमुद्रित पंक्तियाँ साभार उद्धृत हैं।)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जैन सामाजिक संघटन के चार आयाम

—पं० बाहुबलि उपाध्ये

[बेलगाँव (कर्नाटक) में 16 मार्च 1925 को जन्में पं० बाहुबलि पार्श्वनाथ उपाध्ये जैनजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, वास्तुविद्, ज्योतिर्विद एवं समाजशास्त्री हैं।

आपने ज्योतिष एवं वास्तुसम्बन्धी अपनी विशेषज्ञता के द्वारा अनेकों ऐतिहासिक महत्त्व के कार्यों को सम्पन्न किया है। यथा 1970 में श्रीनगर गढ़वाल के जिनमन्दिर एवं 1973 में श्रवणबेलगोल के मन्दिर का वास्तुदोष-निवारण एवं प्रतिष्ठा कार्य आप ही के करकमलों से हुआ, तभी से ये दोनों स्थल अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति को प्राप्त हुये। आपने पिछले पाँच दशकों में गाँव-गाँव जाकर पाठशालों द्वारा हजारों बच्चों में जैनत्व के संस्कार जगाये हैं। सात्त्विक एवं संयमित जीवनचर्या वाले आप जैसे विद्वानों के ज्ञान एवं अनुभव से कर्नाटक राज्य-प्रशासन ने भी अनेकों प्रसंगों में लाभ लिया है।

जैनसमाज के संघटनात्मक ढांचे में सुधार के लिए आगम परम्परा पर आधारित उनका यह लेखन मननीय एवं अनुकरणीय है। —*सम्पादक*]

वीतराग जैनशासन में अनेकान्तदृष्टि के सन्तुलन से ही जीवनशैली एवं साधनामार्ग में सामञ्जस्य की स्थापना संभव हो सकी है। क्योंकि मूलत: तीर्थंकरों के उपदेश, आचार्यों के सन्देश एवं आगम का निर्देश 'रागभाव' छोड़कर वैराग्य एवं वीतरागता के मार्ग का अनुसरण करने के विषय में है; तथा जैनसाधना पद्धति भी वैराग्यमूलक है। जबकि लोकजीवन में चाहे परिवार हो या समाज, उसके संघटनात्मक ढांचे को सुदृढ़ रखने के लिये एवं उसके सुव्यवस्थित संचालने के लिए 'राग' के पक्ष से नितान्त अस्पृष्ट नहीं रहा जा सकता है।

धर्म की प्रारम्भिक अवस्था की साधना गृहस्थ जीवन में ही होती है। गृहस्थ अवस्था में जीव परपदार्थों एवं परभावों में रागभाव छोड़ने एवं वीतराग स्वभावी आत्मातत्त्व का आश्रय लेने का अभ्यास करता है। किन्तु एकदम से ऐसा उग्र पुरुषार्थ कदाचित् सम्भव न हो, तो भी ऐसा भाव दृढ़ बना रहे तथा पारिवारिक एवं सामाजिक संघटन भी बाधित न हो - इस भावना से सांसारिक अप्रशस्त राग की अपेक्षा परम्परया मोक्षसाधनभूत प्रशस्त राग के प्रसार की प्रेरणा श्रमण-परम्परा में प्राप्त होती है।

इस प्रशस्त राग को 'अनुराग' संज्ञा देकर इसके चार भेद आगमग्रन्थों में वर्णित हैं- 1. धर्मानुराग, 2. भावानुराग, 3. प्रेमानुराग और 4. मज्जानुराग। सामान्यत: ऐसा प्रतीत होता है कि इनके माध्यम से रागभाव दृढ़ होता होगा, किन्तु ऐसा नहीं है। ये चारों अनुराग वीतरागभाव एवं वैराग्यभाव में आस्था दृढ़ करते हुए सामाजिक

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ढाँचे एवं सागारधर्म को निर्विघ्न-निरापद बनाये रखने के निमित्त हैं।

इन चारों के बारे में सर्वप्रथम निर्देश शासननायक तीर्थंकर महावीर स्वामी के प्रधान शिष्य इन्द्रभूति गौतम, जिन्हें हम 'गौतम गणधर' के नाम से जानते हैं, ने 'प्रतिक्रमणसूत्र' में किया है-

"से अभिमद जीवाजीव-उवलद्ध पुण्ण-पाव-आसव-बंध-संवर-णिज्जर-मोक्ख-महिकुसले, धम्माणुरागरत्तो, भावाणुरागरत्तो, पेम्माणुरागरत्तो, अट्ठिमज्जाणुरागरत्तो, मुच्छिदट्ठे, गिहिदट्ठे, णिग्गंथपवयणे अणुत्तरे से अट्ठे सेवणुट्ठे।" *(प्रतिक्रमणसूत्र पृ०)*

इसी चतुर्विध अनुराग को 'जिनशासन की प्रभावना का साधन' आचार्य शिवार्य ने 'भगवती आराधना' में बताया है-

भावाणुराग-पेम्माणुराग-मंज्जाणुरागरत्तो वा।
धम्माणुरागरत्तो य होदि जिणसासणे णिच्चं।। 736।।

अर्थ:-जिनशासन की प्रभावना करनेवाले व्यक्ति के नित्य ही भावानुराग, प्रेमानुराग, मज्जानुराग एवं धर्मानुराग-यह चार प्रकार का अनुराग होता ही है।

आचार्य अमितगति इन चारों अनुरागों के माहात्म्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि जिस धर्मात्मा जीव के जैनमत में ये चारों अनुराग होते हैं, उसे जगत् में कुछ भी दुर्लभ नहीं हैं

ये धर्म-भाव-मज्जादि-प्रेमरागानुरञ्जिता:।
जैने सन्ति मते तेषां न किंचिद्वस्तु दुर्लभम्।।"

– *(मरणकण्डिका, 7/770)*

वीतराग जैनशासन के प्रभावक एवं समस्त शुभसंयोगों की प्राप्ति में सहायक उक्त चारों अनुरागों का संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है-

1. धर्मानुराग:-सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्ररूप एवं अहिंसा-प्रधान, दयामूलक धर्म में जिसकी रुचि है, श्रद्धा है एवं प्रगाढ़ अनुरक्ति है; वह धर्मानुराग है। यह सर्वोत्कृष्ट अनुराग है। समस्त मोक्षगामी भव्यजीवों को यह अनुराग विशेषत: पाया जाता है।

2. भावानुराग:-वीतराग जैनधर्म एवं उसके धारक व्यक्तियों का मान-गौरव नहीं घटे; कदाचित् कोई मायाचार से वेष आदि धारण करके भी धर्मविरुद्ध एवं लोकाचार के विरुद्ध कार्य करना चाहे, तब भी येन-केन-प्रकारेण धर्म और धर्मात्मा का लोकापवाद होने से बचाना 'भावानुराग' है। इसे ही सम्यक्त्व के आठ अंगों में 'उपगूहन अंग' कहा गया हैं

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि धर्म की आड़ में कोई पापाचार करे, और हम भावानुरागी बने रहने के लिए उसके पापाचरण को ढँके रहें या उसको ठीक बतावें; अपितु सार्वजनिकरूप से उसका दुष्प्रचार होने से नीतिपूर्वक बचायें –यह अभिप्राय है। अन्यथा लोग 'अरे! सब धर्मात्मा देख लिए; देखो फलाँ बड़े धर्मात्मा बनते थे और ऐसा दुष्कर्म किया' –इस तरह का अपवाद फैलायेंगे, जिससे धर्म एवं धर्मात्मा के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होगी।

'भावानुराग' के विषय में जिनदत्त श्रेष्ठी का दृष्टान्त प्रसिद्ध है। तदनुसार किसी चोर ने क्षुल्लक का वेश धारण करके जिनमन्दिर से छत्र चुराकर भागना चाहा, किन्तु पकड़े जाने पर यह कह दिया कि "यह तो जिनदत्त श्रेष्ठी ने मंगवाया था, मैं तो उन्हीं के कहने पर ले जा रहा था।" बाद में माली आदि के द्वारा जिनदत्त श्रेष्ठी के सम्मुख पूरा वृत्तान्त प्रस्तुत किये जाने पर जिनदत्त श्रेष्ठी ने कहा कि "इन्हें छोड़ दो, ये निर्दोष हैं; इनसे यह छत्र मैंने ही मँगवाया था।" इसप्रकार 'जैनव्रती चोर होते हैं' –ऐसा लांछन लगने से बचा लिया। किन्तु अकेले में उस क्षुल्लकवेशधारी को चोरी जैसे दुष्कर्म के लिए वचनों से प्रताड़ित भी किया तथा व्यापार आदि के निमित्त सहायता देकर आत्मनिर्भर बनाया, ताकि पुन: चोरी जैसा दुष्कर्म न करना पड़े।

3. मज्जानुराग:–साधर्मीजनों के प्रति ऐसा सुदृढ़ अनुराग होना, जो कैसी भी विकट परिस्थितियों में भी एक दूसरे का साथ नहीं छोड़े, वह 'मज्जानुराग' कहलाता है। इसे ही 'अट्ठिमज्जानुराग' भी कहा गया है, अर्थात् जैसे अस्थि (हड्डी) मज्जा को कभी नहीं छोड़ती है, दोनों एक दूसरे से दृढ़ता से बंधे रहकर पारस्परिक सहयोग करती हैं; इसीप्रकार साधर्मीजनों के प्रति प्रत्येक परिस्थिति में सहयोगीवृत्ति रखते हुए उनके परिणामों में दृढ़ता बनाये रखना ही 'मज्जानुराग' है।

इस विषय में आचार्य अतिमगति ने पाण्डवों का दृष्टान्त आदर्शरूप में प्रस्तुत किया है। जैसे पाण्डवों ने बचपन से लेकर साधना की दशा तक कभी एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ा। द्यूतक्रीड़ा में हारने पर युधिष्ठिर को भला-बुरा नहीं कहा, अपितु पाँचों भाईयों ने मिलकर वनवास भोगा तथा राज्य मिलने पर भी पाँचों भाई समान अधिकार एवं प्रेम से साथ रहे। यहाँ तक कि दीक्षाप्रसंग में भी पाँचों भाई साथ दीक्षित हुये एवं उन्होंने साथ ही शत्रुंजयगिरि पर तपस्या की। संसार से लेकर मोक्षमार्ग तक अटूट सम्बन्ध का इससे अधिक अनुकरणीय दृष्टान्त और क्या हो सकता है? विशेषत: इस युग में, जब जरा-जरा बात के लिए भाई-भाई में कोर्ट-कचहरी एवं कहा-सुनी की नौबत आ जाती है, यहाँ तक कि मारपीट एवं

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अन्य आपराधिक घटनायें भी घट जाती हैं; समाज के लोगों के लिए पाँचों पाण्डवों के 'मज्जानुराग' का अनुकरण पारिवारिक एवं सामाजिक संघटनात्मक ढाँचे को सुदृढ़ एवं आदर्श बना सकता है।

4. प्रेमानुराग:-संसार के विषय-भागों की रुचि-आसक्ति को हम प्राय: 'प्रेम' समझते हैं। किन्तु जिनशासन में विषय-भोगों से रुचि छुड़ाकर वैराग्य की ओर प्रेरित करना ही प्रेमानुराग' माना गया है।

इस विषय में आचार्यदेव ने 'मणिचूल' नामक देव एवं 'सगर चक्रवर्ती' का दृष्टान्त दिया है। मणिचूल देव अपने मित्र सगर चक्रवर्ती को सांसारिक विषय-भोगों एवं राजपाट से विरक्त हो संयम अंगीकार करने की बार-बार प्रेरणा देता था। किन्तु चक्रवर्ती के भोगों एवं सुख-सम्पत्ति में सगर का मन ऐसा रमा हुआ था कि उसके मन पर मणिचूल के कहने/समझने का कोई असर नहीं होता था। तो मणिचूल देव ने चक्रवर्ती सगर को संसार से विरक्त करने के लिए एक चाल चली। उसने सगर चक्रवर्ती के सारे पुत्रों को अपनी शक्ति से मूर्च्छित कर दिया। सगर ने उन्हें मरा हुआर जानकर संसार की क्षणभंगुरता का चिन्तन करते हुए वैराग्य अंगीकार कर लिया। तत्पश्चात् मणिचूल नामक उस देव ने उन पुत्रों को पुन: स्वस्थ कर दिया। इसप्रकार कृत्रिम जीवनभय आदि दिखाकर मणिचूल देव ने अपने मित्र सगर चक्रवर्ती को जिस तरह वैराग्य मार्ग पर स्थिर किया – इसे 'प्रेमानुराग' का आदर्शरूप माना गया है। इसे ही सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में 'स्थितिकरण अंग' भी कहा गया है।

ये चारों प्रकार के अनुराग स्वस्थ पारिवारिक-सामाजिक एवं राष्ट्रिय वातावरण के निर्माण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। अन्तिम लक्ष्य वैराग्यपूर्वक वीतरागता के प्रति उत्तरदायी होने से ये परम्परया मोक्षसाधन भी हैं। आज हम इन चतुर्विध अनुरागों को भूलने के कारण ही अपनी पारिवारिक-सामाजिक एवं राष्ट्रीय पहिचान खोते जा रहे हैं। अत: आज हमें इन अनुरागों को समझने एवं अपनाने की प्रबल आवश्यकता है। **

येन केन प्रकारेण जैनधर्म: प्रवर्धते।
तदेव क्रियते पुम्भिरपायविचयं मताम्।। *–सोमसेन त्रैविद्य, 1/35, पृ० 10*
अर्थ:–जिस किसी भी प्रकार से 'जैनधर्म' की प्रभावना हो – ऐसा विचार करना 'अपायविचय धर्मध्यान' है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

भक्त प्रत्याख्यान : सल्लेखना

–आचार्य विद्यानन्द मुनि

जीवन जीने की कला के सम्बन्ध में सभी विचारकों ने अपने विचार रखे हैं; किन्तु मरण को भी स्वागतयोग्य यदि किसी ने माना है और उसके बारे में कोई विधान प्रस्तुत किया है, तो वह एकमात्र जैनदर्शन ही है। वस्तुत: 'मृत्यु केवल प्रशंसनीय ही नहीं है, अपितु निश्चय से शाश्वत कल्याण को भी उत्पन्न करनेवाली होती है'–ऐसी अवधारणा के बल पर ही जैनदर्शन ने मरण को भी मांगलिक महोत्सव बना दिया है।

नियमपूर्वक जीवन जीना और जब मरण अवश्यंभावी हो, तो बिना किसी खेद-खिन्नता के स्वयं अपने शरीर को यमराज के हाथों सौंपते हुए अपने परिणामों को संभालने की विधि को जैनदर्शन में 'सल्लेखना' नाम दिया गया है। आचार्यप्रवर उमास्वमी 'तत्त्वार्थसूत्र' (7/22) में लिखते हैं–

"मारणान्तिकी सल्लेखना जोषिता"

अर्थात् मरणकाल में अन्तिम समय निकट आने पर विधिपूर्वक सोत्साह सल्लेखना का आयोजन करना चाहिए।

संसार में मृत्यु की चर्चा भयप्रद मानी गयी है, किन्तु जैनशास्त्रों में 'सल्लेखना' का चर्चा को प्रसन्नता का निमित्त बतलाया गया है–

"सम्यक्त्वपूर्वकमुपासकधर्ममित्थं,
सल्लेखनाऽन्तमभिधाय गणेश्वरेऽत्र।
जोषं स्थिते प्रविचकास सभा समस्ता,
भानाविवोदयगिरिं नलिनीति भद्रम्।।"

अर्थ:–गणधरदेव द्वारा सम्यक्त्वपूर्वक इसप्रकार उपासक धर्म का सल्लेखनान्त प्ररूपण करने पर सम्पूर्ण समवशरणसभा उसीप्रकार प्रसन्न हो उठी, जैसे कि सूर्यादय होने पर कमलिनी खिल उठती है।

सामान्यत: संसारी प्राणी को अपने प्राणों की चिन्ता रहती है; वह भली-भाँति जानता है कि 'मेरे चाहने से प्राण ठहरेंगे नहीं', फिर भी वह उन्हें स्थिर करना चाहता है। इसका मार्मिक निरूपण करते हुए 'भगवती आराधना' के टीकाकार लिखते हैं– **"जीवितं नाम प्राणधारणं; तदायुरायत्तं, न ममेच्छया वर्तते। सत्यमपि तस्यां प्राणानामनवस्थानात्। सर्वं हि जगदिच्छति प्राणानामनपायं, न च तेऽवतिष्ठन्ते।** *–(भगवती आराधना, विजयोदया टीका, गा० 21, पृ० 43)*

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अर्थ:-प्राणधारण करने को जीवन कहते हैं; वह आयु के अधीन है, मेरी इच्छा के अधीन नहीं है। मेरी इच्छा होने पर भी प्राण नहीं ठहरते हैं। सम्पूर्ण जगत् चाहता है कि उसके प्राण बने रहें, किन्तु वे नहीं रहते हैं।

विधिपूर्वक शरीर-त्याग की विधि 'सल्लेखना' के बारे में जैनदर्शन में अनेकों दृष्टियों से चिंतन प्रस्तुत किये गये हैं। यहाँ प्रमुखत: तीन बिन्दु विचारार्थ प्रस्तुत हैं-

'सल्लेखना' की समय-सीमा-

"भत्तपइण्णाइ-विहि, जहण्णमंतोमुहुत्तयं होदि।
वारिसवरिसा जेट्ठा, तम्मज्झे होदि मज्झिमया।।"

-(गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गाथा 60)

अर्थ:-'भक्तप्रत्याख्यान' अर्थात् भोजन-त्याग (अन्न, खाद्य, लेह्य पदार्थों के त्याग) की प्रतिज्ञा करके जो सन्यासमरण (सल्लेखना) होता है, उसका जघन्य कालप्रमाण अन्तर्मुहूर्तमात्र है एवं उत्कृष्टतम कालप्रमाण बारहवर्ष है। तथा अन्तर्मुहूर्त से लेकर बारहवर्ष पर्यन्त जितने भी समयभेद हैं, वे सब सल्लेखना के मध्यमकाल के भेद जानने चाहिए।

'सल्लेखना' के योग्य स्थान-

"अरिहंत-सिद्धसागर-पउमसरं खीरपुप्फ-फलभरिदं।
उज्जाण-भवण-तोरण-पासादं णाग-जक्खघरं।।"

-(मूलाराधना, गाथा 560)

अर्थ:-अरिहन्त का मन्दिर (जिनालय), सिद्धों का मन्दिर (संभवत: सिद्धक्षेत्र), जहाँ पर अरिहन्त-सिद्ध आदि की प्रतिमायें हैं-ऐसे पर्वत आदि स्थान, कमलयुक्त तालाब, समुद्रतट का प्रदेश, दूधवाले वृक्षों से युक्त स्थान, फूल-फलों से लदे हुए वृक्षों से सुशोभित जगह, उद्यान, तोरणद्वारों से सज्जित घर, नागों के घर (बांबियों) के समीप एवं यक्षादि का स्थान-ये सभी 'सल्लेखना' लेनेवाले व्यक्ति के लिए आदर्श एवं पवित्र स्थल हैं।

ध्यातव्य है कि भगवान् महावीर ने भी निर्वाण के पूर्व पावापुरी में राजा हस्तिपाल के महल के समीप, कई कमलसरोवरों के मध्यवर्ती मणिशिलातल पर प्रतिमायोग धारण किया था:—"बहूनां सरसां मध्ये महामणिशिलातले" *(उत्तरपुराण)*

इसीप्रकार "भग्गपडिदं वा" - भग्नानि पतितानि वा भाजनानि गृहाणि वा यस्मिन् स्थाने सद् भग्नपतितम्" *(भगवती आराधना, गा० 558 व टीका)* अर्थात् खंडहर एवं टूटू-फूटे बर्तनोंवाले जो घर हों -ऐसे स्थल सल्लेखना ग्रहण करने के

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

लिए अशुभ माने गये हैं।

'सल्लेखना' में दिशा-विचार—सल्लेखना ग्रहण करने में दिशाचयन का भी वैज्ञानिक महत्त्व माना गया है। सामान्यत: सभी आचार्यों ने ईशान (पूर्वोत्तर) दिशा को 'सल्लेखना' ग्रहण करने के लिए आदर्श दिशा माना है। पंडितप्रवर आशाधर सूरि ने ईशान दिशा को 'जगत्-शांति करनेवाली' माना है-

"पूर्वैशानस्य दिग्भागे, शान्त्यर्थं जगतामिह।"

-*(आशाधरसूरिकृत पूजापाठ, पृ० 72, पद्य 11)*

आचार्य उग्रादित्य ने स्पष्टत: ईशानदिशा को 'सल्लेखना' के लिए उपयुक्त घोषित किया है-"विचार्य पूर्वोत्तरसद्दिशां तां भूमौ शिलायां सिकतासु वापि।"

- *(कल्याणकारक, पृ० 712)*

अर्थ:-(सल्लेखना के लिए) पूर्वोत्तर दिशा को ही श्रेष्ठ दिशा मानकर, उसी दिशा में भूमि पर, शिलातल पर अथवा साफ रेत में सल्लेखना ग्रहण करनी चाहिए।

'वृहत्कल्पसूत्र' में भी 'उत्तरपूर्वीदिशा' (ईशान) को पूज्य/पवित्र माना गया है-

"उत्तरपुव्वा पुज्जा" -*(बृहत्कल्पसूत्र, सूत्र 457)*

जीवनभर पश्चिम या दक्षिण दिशा में सिर करके सोना तथा मरणबेला में पूर्व अथवा उत्तर में सिर करके लेटना - यह शुभ माना गया है। पंडितप्रवर आशाधर सूरि लिखते हैं-

"प्रागुदग्वा शिर: कृत्वा, स्वस्थ: संस्थरमाश्रयेत्।" -*(सागारधर्मामृत, 8/34)*

अर्थ:-पूर्वीदिशा अथवा उत्तरदिशा में सिर करके आत्मध्यानपूर्वक 'संस्थर' (संथारा-समाधिमरण या सल्लेखना) लेना चाहिए।

दिशा के बारे में कतिपय प्रायोगिक अनुभव के बिन्दु भी विचारार्थ प्रस्तुत हैं:-

1. वर्तमान आचार्य-परम्परा के शीर्ष व्यक्तित्व आचार्य शान्तिसागर जी समाधिमरण से 3 दिन पूर्व ही ईशानदिशा में चले गये थे।
2. आचार्यप्रवर देशभूषण जी मुनिराज भी देहावसान के नौ-दस घंटे पूर्व ईशान कोण में जाकर रहे थे।
3. प्रख्यात विद्वान् पं० कलप्पा निटवे शास्त्री की धर्मपत्नी ने भी शरीर त्याग से 15 दिन पूर्व ईशानदिशा में जाकर रहीं।

तथा इन सभी का अत्यन्त प्रशान्त परिणामपूर्वक बिना किसी बाधा के शरीर छूटा था। अत: ईशानदिशा का सल्लेखना की दृष्टि से महत्त्व स्पष्टत: माना जा सकता है। **

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

समाधिश्च भवेन्मृतौ

–कविवर भूधरदास जी

रखा चलता नाँहि, चरखा हुआ पुराना।
पग–खूंटे दो हालन लागे, उर मदरा ख़ख़राना।
छीदी हुई पाँखड़ी पांसू, फिरै नाँहि मनमाना।।
रसना तकली ने बल खाया, सो अब कैसे खूटै।
शबद–सूत सूधा नहीं निकले घड़ि–घड़ि पल–पल टूटै।
आयु–माल का नाँहि भरोसा, अंग चलाचल सारे।
रोज इलाज मरम्मत चाहै, वैद–बाढ़ही हारे।।
नया चरखला रंगा चंगा, सबका चित्त चुरावै।
पलटा वरन गये गुल अगले, अब देखैं नहिं भावै।।
मोटा महीं कातकर भाई! कर अपना सुरझेरा।
अन्त आग में ईंधन होगा, 'भूधर' समझ सवेरा।।

अर्थः–अब यह चर्खा चलता नहीं, पुराना जो हो गया है। (कवि ने बुढ़े एवं रोगी शरीर को चर्खा कहा है।) इस शरीररूप तन्तुचक्र के दो पग ही दोनों खूँटे हैं, जो सन्धियों के शिथिल होने से हिलने लगे हैं। हृदयरूप मध्यभाग खर-खर करने लगा है, श्लेष्मा की अधिकता से श्वास बोलने लगे हैं। इसकी पंखुड़ियाँ (आरे) तथा पसलियाँ (पर्शुकाएँ) छीदी-विरल होकर फैल गई हैं, इसलिए अब इच्छानुकूल नहीं फिरता। इसकी जिह्वारूप तकली में बल पड़ गये हैं-वक्रता आ गई है; अब वह अपने खूँटे से बँधी रहने में अशक्त है। शब्दरूप सूत अब सीधा नहीं निकलता है और घड़ी-घड़ी, पल-पल टूट जाता है। इन लक्षणों को देखते हुए आयुरूप माल (चर्खे की डोरी) का कोई भरोसा नहीं रहा कि कब टूट जाये। इसके सारे अंग-प्रत्यंग चलायमान हो चले हैं। प्रतिदिन यह शरीररूपी चर्खा मरम्मत माँगता है। वैद्य और वर्धकि (बढ़ई) हार गये हैं। इसमें आश्चर्य अथवा अनहोनी भी क्या है? नवीन तन्तुचक्र तो नेत्रहारी रंगों में रंगा होता ही है और सबका चित्त चुराता ही है। किन्तु अवस्था परिपक्व होने पर यौवन के वे वर्ण बदल जाते हैं और स्पृहणीय गुणों का अवसान हो जाता है। अब तो यह अपरूप दूसरों को क्या स्वयं को भी अच्छा नहीं लगता। किन्तु कहावत है- 'जब तक जीना तब तक सीना' – अत: हे भाई ! कातना तो पड़ेगा। अन्तिम क्षणावधि तक कार्य तो करना ही होगा। मोटा या महीन जैसा बन बड़े, कर्तव्यरूप सूतको कातकर अपने को जीवन को सुलझा लो। क्योंकि एक दिन जब मोटा-महीन कातने की भी शक्ति नहीं रहेगा-यह चर्खा 'चर्खा' न रहेगा, कोरा काष्ठ समझा जाएगा और यह शरीर शव हो जाएगा, तब इसे अग्नि-समर्पित कर दिया जाएगा। 'भूधर' कवि कहते हैं "इस सत्य को, समझो।''

**

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"वाचक-वाच्य नियोग"

–मुनि कनकोज्ज्वलनंदि

मुनिश्री कनकोज्ज्वलनंदि जी विगत चार-पाँच वर्षों से कुन्दकुन्द भारती में आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज के सान्निध्य में रहकर विधिवत् दर्शनशास्त्र एवं भाषाशास्त्र का अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने 'राजवार्तिक' जैसे दार्शनिक ग्रंथों एवं सिद्धान्तकौमुदी' जैसे व्याकरण-ग्रंथों का विधिवत् अध्ययन किया है। वे मूलत: कन्नड़भाषी होते हुए भी धाराप्रवाह रूप से संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओं में लिखते-बोलते हैं। आजकल वे शौरसेनी प्राकृतभाषा के व्याकरण एवं साहित्य के क्षेत्र में सूक्ष्म गवेषणापूर्वक अध्ययन कर रहे हैं।

प्रस्तुत लेख भी उन्हीं की गवेषी मनीषा से प्रसूत एक गम्भीर लेख है, जिसके मर्म का औसत स्तर पर सहजता से बोध नहीं हो सकता है। इसके लिए शांतचित्त होकर एकाग्रता से अध्ययन एवं चिंतन अपेक्षित है। वर्तमान साधुसमाज में दर्शन एवं भाषा के प्रति ऐसी लगन एवं मेधाप्रयोग की उपलब्धि प्राय: दुर्लभ हैं। *–सम्पादक*

प्रात: स्मरणीय आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव की श्रुतसाधना के अन्तर्बाह्य पक्ष अत्यन्त सुदृढ़ एवं परिपूर्ण थे। जहाँ आत्मतत्त्व की प्रचुर अनुभूति एवं तप:साधना की गरिमा से आध्यात्मिक भावप्रवणता अनुपम एवं सर्वश्रेष्ठ थी, वहीं उनके भावों की अभिव्यक्ति के लिए मानो साक्षात् वाग्देवता (सरस्वती) ही उनके समक्ष प्रस्तुत रहती थी; इसीलिए उनके ग्रंथों में भावों के साथ-साथ भाषा का भी उत्कृष्ट स्वरूप अत्यन्त प्रामाणिकरूप से उपलब्ध होता है।

उनके टीकाकार आचार्यों ने उनके परमागमों के प्रत्येक पद के अन्तर्बाह्य स्वरूप की गरिमा को सूक्ष्मता से विवेचित करते समय उन्हें शब्दश: एवं अर्थश: प्रभूत सम्मान दिया है। किन्तु उनके ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ अनेक कालखण्डों में विभिन्न क्षेत्रों में की गयीं, जिसके फलस्वरूप प्राकृतभाषा के प्रवाहमयी भाषा होने से प्रतिलिपिकारों से अपने देश-काल के पाठों के अनुरूप कुछ पाठों के रूप परिवर्तित हो गये। आधुनिक विद्वानों में शौरसेनी भाषा के साहित्यिक एवं व्याकरणिकस्वरूप का कोई सुनिश्चित ज्ञान न होने से किसी ने कोई पाठ माना, तो किसी ने कुछ। फलस्वरूप इतने अधिक पाठभेद हो गये कि 'कुन्दकुन्द ने क्या लिखा?' –इसका निर्धारण कठिन हो गया। इस स्थिति का लाभ कतिपय पण्डितम्मन्य लोगों ने उठाया और कह दिया कि "प्राकृतभाषा के कई रूप रहे हैं, उसमें लचीलापन होने से सभी पाठ बन सकते हैं; अत: पाठों का निर्धारण मत करो, सभी को कुन्दकुन्द का मूलपाठ मान लो।"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इस विषय में मेरी एक जिज्ञासा है कि कुन्दकुन्ददेव ने किसी एक प्राकृत (शौरसेनी) में ही ग्रंथरचना की थी, और उसके नियमों के अनुसार जो पाठ बनता होगा, जो उस समय प्रचलित रहा होगा; वही पाठ उन्होंने रखा होगा। ऐसा तो हो नहीं सकता कि एक साथ उन्होंने तीन-चार पाठ रख दिये हों, जैसे कि आज मिलते हैं। तब ऐसी स्थिति में दो पैसे का मिट्टी का बर्तन ठोक-बजाकर लेनेवाली यह विद्वत्समाज कुन्दकुन्द के 'द्रव्यश्रुत' का स्वरूप-निर्धारण करने में इतना उपेक्षाभाव क्यों रखे हुए है? क्या भावों की वकालत करनेवाले विद्वज्जन यह मानते हैं कि 'द्रव्यश्रुत' विकृत या विरूपित होने पर 'भावश्रुत' सुरक्षित रह सकता है? कदापि नहीं। एक-दो स्थल मैं विद्वत्समाज के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

1. 'समयसार' गाथा 9-10 में 'सुद' मूलपाठ है-

"जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा।।
जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
सुदणाणमाद सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा।।

इनमें आगत 'सुद' पाठ मूल शौरसेनी प्राकृत का है; जो कि कुन्दकुन्द की ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण दिगम्बर जैन साहित्य की माध्यम भाषा रही है। यही शुद्धपाठ है। जबकि अनेकों प्रतियों में इसके स्थान पर 'सुयं' पाठ मिलता है, जो कि अर्धमागधी एवं महाराष्ट्री प्राकृत का है। विचारणीय बात यह है कि जिस समय कुन्दकुन्ददेव ने परमागमों की रचना की, उस समय न तो अर्धमागधी प्राकृत का जन्म हुआ था, और न ही महाराष्ट्री प्राकृत का। ये दोनों परवर्ती प्राकृत हैं, अत: इनके पाठभेदों की कुन्दकुन्द-साहित्य में होने की संभावना ही नहीं है। हाँ ! जो विद्वान् कुन्दकुन्द को परवर्ती (5वी०ई० के बाद का) सिद्ध करना चाहते हैं, उन्हें ये पाठ अवश्य आदरणीय लगेंगे; क्योंकि अर्द्धमागधी एवं महाराष्ट्री चौथी-पाँचवीं शता० ई० से पूर्व साहित्यिक अस्तित्व में नहीं थीं, अत: इन्हें कुन्दकुन्द के पाठ बताकर कुछ लोग कुन्दकुन्द को परवर्ती सिद्ध करने में लगे हुए हैं। प्रतीत होता है कि जो विद्वान् इन प्राकृतों के पाठों को कुन्दकुन्द-साहित्य में मान्यता दिलाने के लिए प्रस्ताव पास करने में एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे हैं, वे पूर्वोक्त लोगों की ही मदद कर रहे हैं। साथ ही भाषाशास्त्र एवं द्रव्यश्रुत-दोनों से खिलवाड़ भी कर रहे हैं।

दिगम्बर-साहित्य में सर्वत्र 'सुद' पाठ ही है। कतिपय बानगियाँ द्रष्टव्य हैं-

(i) जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवली तमाहु जिणा।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सुदणाणमाद सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा।।

–आ० शुभचंद्र त्रैविद्यकृत कार्तिकेयानुप्रेक्षावृत्ति, गा० 465 पृ० 392

(ii) सुदभावणाए णाणं णाणं दंसणंतवसंजमं परिणमदि।
तो उवओगपइण्णा सुहमच्चविदो समाणेदि।।

(भगवती आराधना, 196)

आधुनिक विद्वानों ने तो इसके 'सुय, सुअ, सुए' आदि अनेकों पाठभेद बना दिये हैं, जो कि एक ही जगह दे दिये हैं– यथा–

"जो हि सुएणहिगच्छइ अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुयकेवलिमिसिणो, भणंति लोयप्पईवयरा।।
जो सुअणाणं सव्वं जाणइ सुयकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुयकेवली तम्हा।।

यह तो सुनिश्चित बात है कि कोई भी विद्वान लेखक एक ही जगह इतने पाठभेद नहीं रख सकता है। सभी विद्वान् लिखते समय क्रमबद्धता एवं वर्तनी की दृष्टि से एकरूपता का ध्यान रखते हैं; तब कुन्दकुन्द जैसे महान् ज्ञानी आचार्य से ऐसा विरूद्धकार्य कैसे संभव है?

2. इसीप्रकार 'समयसार' की गाथा 356 भी द्रष्टव्य है–

"जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।
तह जाणगो दु ण परस्स जाणगो जाणगो सो दु।।

(बालचंद्र मुनि की टीका प्रति)

"जह सेटिया दु ण परस्स सेटिया सेटिया य सा होदि।
तह जाणगो दु ण परस्स जाणगो जाणगो सो दु।।

(आ० ज्ञानसागर जी की प्रति)

"जह सेढिया दु ण परस्स सेढिया सेढिया य सा होदि।
तह जाणगो दु ण परस्स जाणगो जाणगो सो दु।।

(श्रवणबेल्गोल की प्रति)

उपरलिखित इन पाठों में सेडिया पाठ ही शुद्ध है, शेष 'सेटिया' एवं 'सेढिया' दोनों पाठ अशुद्ध हैं। क्योंकि 'सेडिया' देसी शब्द है, और देशी शब्दों के रूप बदलते नहीं हैं; वे ज्यों के त्यों रहते हैं। तथापि लगता है प्रतिलिपिकारों को 'सेडिया' शब्द एवं उसके अर्थ का ज्ञान न होने से 'सेठिया' जैसा कोई अभिप्राय लेकर इन पाठों की रचना की, तथा आधुनिक कछ विद्वानों ने भी उनका अनुकरण कर दिया।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मेरी जिज्ञासा यह है कि यदि द्रव्यश्रुत 'वाचक' है और भावश्रुत 'वाच्य' है, तो वाचक का रूप भ्रामक होने पर वाच्य की निभ्रन्तरूप से प्राप्ति कैसे हो सकेगी? कुन्दकुन्द के परमागमों में 'शब्द' एवं 'आत्मा' –दोनों का वाचक-वाच्यरूप ब्रह्म एवं मंगलरूप मानकर ही पं० जयचंद जी छाबड़ा ने अपनी वचनिका लिखी है–

"शब्दब्रह्म परब्रह्म के वाचक-वाच्य नियोग।
मंगलरूप प्रसिद्ध है, नमों धर्म-धन भोग।।

(पं० जयचंद जी छाबड़ाकृत 'समयसार वचनिका', मंगलाचारण, पद्य 2)

'शब्द' रूपी तत्त्व में 'अर्थ' स्फुटित होता है, अतएव भट्टो जी दीक्षित ने 'शब्दार्थ कौस्तुभ' (पृ० 12) में 'स्फुटत्यर्थोऽस्मादिति स्फोट:' – यह स्वीकार किया है।

यद्यपि शब्द पौद्गलिक हैं एवं आत्मा चेतनतत्त्व है; तथापि आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने शब्दों की वाचकता एवं आत्मा की वाच्यता ही नहीं मानी, अपितु शब्द की चैतन्यकोण में स्थिति भी बतायी है–

"न शब्दसत्ता सह सर्ववाचकैर्विलङ्घयेत् पुद्गलतां कदाचन।
तथापि तद्वाचकशक्तिरञ्जसा चिदेककोणे तव देव वल्गति।।"

(लघुतत्त्वस्फोट, 8)

अर्थ:–शब्दसत्ता समस्तवाचक पदार्थों के साथ अपनी पौद्गलिकता का कभी भी परित्याग नहीं कर सकती है; तथापि हे नाथ! उन शब्दों में जो वाचकशक्ति है, वह नियमत: आपके चैतन्य के एक कोने में क्रीड़ा करती विलसती है।

'द्रव्यश्रुत' भी 'सरस्वती का रूप' माना गया है तथा मुनिजनों ने इसके द्वारा जो 'तीर्थ' की उपासना की है, वह 'पाप-निवारिणी' है, –ऐसा हम प्रतिदिन मंगलाचरण में पढ़ते हैं–

"अविरलशब्दघनौघ-प्रक्षालित-सकल-भूतलमलकलंका:।
मुनिभिरुपासिततीर्था: सरस्वती हरतु नो दुरितान्।।

अर्थ:–भगवती सरस्वती ने निरन्तर बरसनेवाले शब्दरूपी जलधरों से समस्त संसार के मालिन्यरूप कलंक (दुर्लांछन) को प्रक्षालित कर दिया है। मुनियों ने इसी के द्वारा तीर्थ की उपासना की है, वह सरस्वती (शब्दमयी द्रव्यश्रुत) हमारे पापों का हरण करे।

यह अत्यन्त खेद की बात है कि जैनसमाजं में आज अपने आगम की भाषा 'शौरसेनी प्राकृत' का जानकार कोई विद्वान् उपलब्ध नहीं है। इसीलिए परमागमों के द्रंव्यश्रुतत्व के साथ ऐसा उत्तरदायित्वरहित व्यवहार हो रहा है। कदाचित् जैनविद्वान् पहिले विधिवत् भाषाशास्त्र एवं शौरसेनी प्राकृत का अध्ययन करते, फिर दिगम्बर जैन आगमों के

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

द्रव्यश्रुत-स्वरूप का सम्पादन करते, तो इससे द्रव्यश्रुत का मूलरूप भी सुरक्षित रहता तथा भ्रमों का अवकाश भी नहीं रहता। मुझे स्वयं शौरसेनी प्राकृत का अध्ययन करते समय इस अभाव का बोध हुआ, कि बहुत खोजने पर भी अधिकारीरूप से शौरसेनी प्राकृत पढ़ाने वाला कोई विद्वान् नहीं मिला। अत: शोध, तुलनापूर्वक स्वाध्यायी शैली से इसे सीखने का यत्न कर रहा हूँ। इसी क्रम में जो अनुभव हुये, उसका मैंने उल्लेख किया है।

जैनविद्वान् एवं विद्यार्थी अपने आगमों की भाषा 'शौरसेनी प्राकृत' को पढ़ें तथा वाचक-वाच्य का मांगलिक नियोग समाज में प्रस्तुत कर सकें – यह भावना है।

**

"प्रकृति: शौरसेनी।।"

(वररुचिकृत 'प्राकृतप्रकाश', 10/2 एवं 11/2)

–मागधी, पैशाची आदि प्राकृतों की प्रकृति शौरसेनी प्राकृत है। शौरसेनी की गोद से ही इन प्राकृतों के स्वरूप का विकास हुआ है। –इसी तथ्य को 'प्राकृतमणिदीप' के कर्त्ता ने "शेषं शौरसेनीवत्" कहकर पुष्ट किया है।

**

अर्द्धमागधी में रचित आगमों में एकरूपता नहीं देखी जाती है, जबकि शौरसेनी में रचित आगमों में भाषा की एकरूपता समग्रभाव से दृष्टिगोचर होती है।

–डॉ० जगदीश चन्द्र जैन
'प्राकृत साहित्य का इतिहास', पृष्ठ 30-31

**

प्राकृत बोलियों में जो बोलचाल की भाषायें व्यवहार में लायी जाती हैं, उनमें सर्वप्रथम स्थान शौरसेनी का है। जैसाकि उसका नाम स्वयं बताता है कि इस प्राकृत के मूल में शौरसेन में बोली जानेवाली बोली है। इस शौरसेन की राजधानी मथुरा थी।

–रिचर्ड पिशेल
'कम्पेरेटिव ग्रामर आफ दि प्राकृत लैंग्वेजेज'
हिंदी अनुवादक –हेमचन्द्र जोशी
विषय-प्रवेश, पृ० 39।

**

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कुन्दकुन्द-साहित्य में प्रयुक्त छन्द

—डॉ० उदयचन्द्र जैन

[डॉ० उदयचन्द्र जैन सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज०) में जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग के विभागाध्यक्ष हैं तथा प्राकृतभाषा जगत् के निष्णात लेखक विचारक मनीषी हैं। प्राकृत व्याकरण, छन्दशास्त्र एवं भाषाविज्ञान के क्षेत्र में उनका गहन अध्ययन है।

आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य के व्याकरणशास्त्र एवं छन्दशास्त्र की मर्यादा से बाहर घोषित करने वाले विद्वानों के लिए संभवत: डॉ० जैन का यह आलेख नये विचारबिन्दु प्रस्तुत करेगा। *—सम्पादक।*]

कुन्दकुन्दाचार्य जैन सिद्धान्त के आध्यात्मिक कवि हैं। जिनका अध्यात्म जगत् में सर्वोपरि स्थान है। आचार्य का सभी रचनाएँ गाथा छन्द में निबद्ध हैं। कहीं-कहीं पर अनुष्टुप्, उग्गाहा, गाहू, विपुला आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। यहाँ कुन्दकुन्द के प्रत्येक ग्रन्थ का छन्द की दृष्टि से मूल्यांकन प्रस्तुत किया जा रहा है।

गाथा छन्द:— **पढमं बारह मत्ता, बीए अट्ठारहेहिं संजुत्ता।**
जह पढमं तह तीअं, दहपंच-विहूसिआ गाहा।।"

अर्थ:—गाथा छन्द का प्रथम चरण 12 मात्राओंवाला, दूसरा चरण 38 मात्राओं से युक्त; जैसे प्रथम चरण में 12 मात्राएँ हैं, उसी तरह तृतीय चरण में होती हैं एवं चतुर्थ चरण 15 मात्राओं से विभूषित होता है।

सव्वाए गाहाए सत्तावण्णाइ होंति मत्ताई।
पुव्वद्धम्मि अ तीसा सत्ताईसा परहम्मि।।

अर्थ:—गाथा छन्द में कुल 57 मात्राएँ होती है। पूर्वार्द्ध में तीस मात्राएँ और उत्तरार्द्ध में सत्ताईस मात्राएँ होती हैं।

यथा— **सत्ता सव्वपयत्था, सविस्सरूवा अणंत-पज्जाया।**
भंगुप्पाद-धुवत्तं, सप्पडिवक्खा हवदि एक्का।।

		S S S I I S S	
प्रथम चरण	—	सत्ता सव्वपयत्था	= 12 मात्रायें
		I S I S S I S I S S S	
द्वितीय चरण	—	सविस्सरूवा अणंतपज्जाया	= 18 मात्रायें
		S S S I I S S	
तृतीय चरण	—	भंगुप्पाद - धुवत्तं	= 12 मात्रायें
		S I S S S I I I S S	
चतुर्थ चरण	—	सप्पडिवक्खा हवदि एक्का	=15 मात्रायें

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

गाथा के भेद

लच्छी दिद्धी बुद्धी लज्जा विज्जा खमा अ देवीआ।
गोरी धाई चुण्णा ताआ कंती महामाई।।
कित्ती सिद्धी माणी रामा गाहिणि विसा अ वासीआ।
सोहा हरिणी चक्की सारसि कुररी सिंही अ हंसीआ।।

अर्थात्—लक्ष्मी, स्मृद्धि, बुद्धि, लज्जा, विद्या, क्षमा, देवी, गौरी, छात्री, चूर्णा, छाया, कांति, महामाया, कीर्ति, सिद्धि, मानिनी, रामा, गाहिनी, विश्वा, वासिता, शोभा, हरिणी, चकी, सारसी, कुररी, सिंही और हंसिका —ये गाथा के भेद हैं।

पञ्चास्तिकाय—इस ग्रन्थ में कुल 173 गाथाएँ हैं, जिनका छन्द की दृष्टि से इस प्रकार मूल्यांकन प्रस्तुत किया जा रहा है। गाथा के भेदों में से निम्न भेद 'पञ्चास्तिकाय' में हैं—रूद्धि, बुद्धि, लज्जा, विद्या, क्षमा, देवी, गौरी, धात्री, चूर्णा, छाया, कान्ति एवं महामाया।

1. रूद्धि—इस गाथा में दीर्घ 26 मात्राएँ और 5 लघु मात्राएँ होती हैं। यथा—

SS SS SS S S S S I S S S S S
एवं कत्ता भोत्ता, होज्झं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।
S I I S I I S S S S S S I S S S
हिंडदि घोरमपारं, संसारं मोहसंछण्णो।। 69।।

2. बुद्धि—इस गाथा में 25 दीर्घ मात्राएँ और 7 लघु मात्राएँ होती हैं। यथा—

SS S S S S S S S S I S I S S S
एदे कालागासा, धम्माधम्मा य पोंग्गला जीवा।
S I I S I I S S S S S S I S S S
लब्भंति दव्वसण्णं, कालस्स दु णत्थि कायत्तं।। 102।।

3. लज्जा—इस गाथा में 24 दीर्घ मात्राएँ और 9 लघु मात्राएँ होती हैं। यथा—
(गाथा—5, 22, 77, 91, 92, 108, 114, 115)

S S S I I S S I S S I I S I S S I I S S
जेसिं अत्थि-सहाओ, गुणेहिं सह पज्जएहिं विवहेहिं।
S S I S I S S S S S S S I I S S
ते होंति अत्थिकाया, णिप्पण्णं जेहिं तइलुक्कं।। 5।।

4. विद्या—इस गाथा में 23 दीर्घ मात्राएँ और 11 लघु मात्राएँ होती हैं। यथा—
(गाथा—8, 10, 18, 31, 64, 72, 80, 106, 109, 113, 120, 123, 141)

S S S I I S S I S I S S I S I S S S
सत्ता सव्व-पयत्था, सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
S S S I I S S S I I S S I I I S S
भंगुप्पाद-धुवत्ता, सप्पडिवक्खा हवदि एक्का।। 8।।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

5. क्षमा—इस गाथा में 22 दीर्घ मात्राएँ और 12 लघु मात्राएँ होती हैं। यथा—

(गाथा—3, 9, 11, 19, 20, 30, 32, 39, 46, 53, 65, 79, 97, 107, 128, 133, 145)

I I I I S I S S S S S S S I S I S S S
दवियदि गच्छदि ताइं, ताइं सब्भाव-पज्जयाइं जं।

I S S S S S S I S I S S S I S S S
दवियं तं भण्णंति, अणण्णभूदं तु सत्तादो।। 9।।

6. देवी—इस गाथा में 21 दीर्घ मात्राएँ और 15 लघु मात्राएँ होती हैं। यथा—

(गाथा—4, 7, 15, 21, 23, 25, 35, 45, 59, 63, 66, 67, 68, 73, 74, 81, 82, 83, 90, 95, 96, 100, 101, 124, 126, 130, 131, 132, 135, 140, 144, 148, 149, 160, 164, 159)

S S S I I S S S S S S I S I S S I
अण्णोण्णं पविसंता, दिंता ओगासमण्णमण्णस्स।

S S S I I S S I S I S S I I S S S
मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति।। 7।।

7. गौरी—इस गाथा में 20 दीर्घ मात्राएँ और 17 लघु मात्राएँ होती हैं। यथा—

(गाथा—1, 6, 11, 12, 17, 25, 26, 27, 29, 34, 38, 40, 43, 47, 48, 50, 54, 57, 60, 61, 62, 74, 75, 84, 87, 92, 99, 103, 105, 112, 119, 121, 122, 129, 138, 152, 153, 162, 168)

S I I I S S S S S I I S S I S I S S I
पज्जयविजुदं दव्वं, दव्वविजुत्ता, य पज्ज़या णत्थि।

S S I S I S S S S I I S I S S I
दोण्हं अणण्णभूदं, भावं समणा परूविंति।। 20।।

8. धात्री—इस गाथा में 19 दीर्घ मात्राएँ और 19 लघु मात्राएँ होती हैं। यथा—

(गाथा—14, 16, 41, 44, 51, 52, 55, 56, 58, 70, 71, 85, 118, 125, 127, 134, 143, 146, 150, 151, 157, 165, 173)

A S S S S S S S I S S S I S I I I S S
भावा जीवादीया, जीवगुणा चेदणा य उवओगो।

I I I I S I I I I S S S I I S I S I I S
सुर-णर-णारय-तिरिया, जीवस्स य पज्जया बहुगा।। 16।।

9. चूर्णा—इस गाथा में 18 दीर्घ मात्राएँ और 21 लघु मात्राएँ होती हैं। यथा—

(गाथा—28, 33, 37, 89, 94, 98, 110, 111, 116, 137, 142, 147, 154, 159)

S I I I S I S S S S S S I S I I S S S
कम्म-मल-विप्पमुक्को, उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता।

S S I S I I I S I I I I I I S I I I S S
सो सव्व-णाण-दरिसी, लहदि सुहमणिंदियमणंतं।। 28।।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

10. **छाया**–इस गाथा में 17 दीर्घ मात्राएँ और 23 लघु मात्राएँ होती हैं। यथा–
(गाथा–36, 86, 88, 136, 158, 161)

I I S I I SS S S S S S I S I S S S
ण कुदोचि वि उप्पण्णो, जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो।
S S S I I S I I S I I I I S I I I S I
उप्पादेदिण किंचि वि, कारणमवि तेण ण स होदि।। 36।।

11. **कान्ति**–इस गाथा में 16 दीर्घ मात्राएँ और 25 लघु मात्राएँ होती हैं। यथा–
(गाथा–104, 117, 139, 156, 166)

I I S I S I I I S S S S S I S I I I S I
चरिया पमादबहुला, कालुस्सं लोलदा य विसयेसु।
II I I S I I S S S S I I S I S I I I
पर–परिताव–पवादो, पावस्स य आवं कुणदि।। 139।।

12. **महामाया**–इस गाथा में 15 दीर्घ मात्राएँ और 27 लघु मात्राएँ होती हैं। यथा–
(गाथा–2, 24, 42, 155, 163, 171)

S S I S I I I S I I I I I I S I S I I I I I S
जीवो सहावेणियदो, अणियद–गुण–पज्जओध परसमओ।
I I I I I I S I I S S S I I S I S S S
जदि कुणदि सगं समयं, पब्भस्सदि कम्मबंधादो।। 155।।

समयसार–इस ग्रन्थ में कुल 415 गाथाएँ हैं। इसमें भी गाथा के अनेक भेद हैं। गाथा छन्द के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में उगाहा, अनुष्टुप् आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है।

1. **ऋद्धि**–इस गाथा में 26 दीर्घ मात्राएँ और पाँच ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

S S S S S S S S S S I S I S S S
सव्वे भावा जम्हा, पच्चक्खादी परे त्ति णादूण।
S S S S S S S S I I S I S S S
तम्हा पच्चक्खाणं, णाणं णियमा मुणेदव्वं।। 34।। *(गाथा 62 भी)*

2. **बुद्धि**–इस गाथा में 25 मात्राएँ दीर्घ ओर सात मात्राएँ ह्रस्व होती हैं। यथा–

आदा खु मज्झ णाणं, आदा मे दंसणं चरित्तं च।
आदा पच्चक्खाणं, आदा मे संवरो जोगो।। 277।।

3. **लज्जा**–इस गाथा में 24 दीर्घ मात्राएँ और 9 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

जो मण्णति हिंसामि य, हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी, णाणी एत्तो दु विवरीदो।। 247।।

(गाथा–61, 128, 29, 188, 229, 234, 247, 250, 279, 299, 332, 335, 401, 402, 403)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

4. विद्या–इस गाथा में 23 दीर्घ मात्राएँ और 11 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

जीवस्स णत्थि रागो, णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं, णोकम्मं चावि से णत्थि।। गाथा० 51।।

(गाथा–22, 25, 40, 48, 51, 53, 54, 92, 112, 177, 185, 202, 228, 231, 240, 245, 251, 252, 282, 285, 294, 296, 298, 328, 348, 355, 390, 398, 400, 415)

5. क्षमा–इस गाथा में 22 दीर्घ मात्राएँ और 13 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

मिच्छत्तं पुण दुविहं, जीवमजीवं तहेव अण्णाणं।
अविरदि जोगो मोहो, कोहादीया इमे भावा।। 87।।

(गाथा–3, 6, 10, 11, 13, 20, 39, 42, 62, 70, 73, 87, 90, 122, 125, 134, 137, 138, 142, 150, 157, 158, 162, 166, 180, 182, 206, 214, 215, 216, 220, 221, 227, 230, 232, 233, 241, 269, 271, 280, 284, 286, 300, 309, 328, 341, 345, 347, 384, 388, 399, 405, 407, 411)

6. देवी–इस गाथा में 21 दीर्घ मात्राएँ और 15 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

जं भावं सुहमसुहं, करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।
तं तस्सहोदि कम्मं, सो तस्स दु वेदगो अप्पा।। 102।।

(गाथा–5, 14, 15, 24, 40, 43, 44, 46, 52, 55, 64, 68, 69, 82, 86, 88, 91, 97, 100, 102, 103, 106, 109, 110, 114, 130, 131, 140, 141, 147, 151, 154, 156, 165, 167, 176, 186, 190, 193, 200, 210, 225, 235, 236, 239, 242, 244, 248, 249, 259, 261, 262, 273, 276, 278, 281, 287, 291, 301, 304, 311, 318, 323, 337, 331, 333, 339, 340, 342, 243, 371, 386, 387, 409, 413)

7. गौरी–इस गाथा में 20 दीर्घ मात्राएँ और 17 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

सुद्धो सुद्धादेसो, णादव्वो परभाव-दरिसीहिं।
ववहार-देसिदा पुण, जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।। 12।।

(गाथा–7, 12, 18, 23, 28, 42, 47, 49, 50, 56, 57, 65, 83, 89, 93-96, 101, 105, 111, 113, 115, 121, 126, 139, 145, 152, 153, 160, 163, 169, 178, 181, 187, 194, 199, 213, 219, 226, 238, 243, 246, 253, 255, 257, 260, 263, 264-269, 270, 283, 292, 293, 303, 305, 318, 326, 330, 368, 369, 370, 372, 383, 408)

5. धात्री–इस गाथा में 19, दीर्घ मात्राएँ ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

कम्मे णोकम्महि य, अहमिदि अहकं च कम्म-णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी, अप्पडिबुद्धो हवदि ताव।। 19।।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

(गाथा–19, 21, 27, 33, 45, 71, 72, 74, 75, 81, 84, 108, 123, 124, 127, 132-136, 148, 149, 164, 168, 170, 173, 175, 183, 191, 197, 198, 203, 204, 208, 211, 218, 222, 224, 227, 254, 256, 274, 308, 319, 337, 338, 374, 385, 389, 406, 410, 412)

9. चूर्णा–इस गाथा में 18 दीर्घ मात्राएँ और ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

दंसण-णाण-चरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि, अप्पाणं चेव णिज्छयदो।। 16।।

(गाथा–4, 16, 26, 30, 36, 37, 38, 85, 99, 104, 106, 116, 117, 119, 144, 146, 155, 156, 174, 179, 201, 207, 212, 223, 272, 288, 306, 310, 316, 320, 321, 344, 353, 376, 377, 383)

10. छाया–इस गाथा में 17 दीर्घ मात्राएँ और 23, ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

जह विसमुवभुज्जंतो, वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि।
पॆॅग्गल-कम्मस्सुदयं, तह भुंजदि णेव बज्झदे णाणी।। 195।।

(गाथा–1, 2, 8, 9, 29, 76, 80, 107, 118, 120, 171, 172, 195, 205, 216, 258, 289, 290, 302, 307, 317, 322, 334, 349, 350, 354, 356, 362, 364)

11. कान्ति–इस गाथा में 16 दीर्घ मात्राएँ और 25 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

णवि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपजाए।
णाणी जाणंतो वि हु, सग-परिणामं अणेयविहं।। 77।।

(गाथा–17, 77-79, 186, 209, 327, 336, 352, 363, 275, 379, 389, 414)

12. महामाया–इस गाथा में 15 दीर्घ मात्राएँ और 27 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा

ववहारेण दु आदा करेदि घड--पड-रधादि-दव्वाणि।
करणाणि य कम्मकाणि य णोकम्माणीह विविहाणि।। 98।।

(गाथा–35, 98, 275, 324, 351, 380)

13. कीर्ति–इस गाथा में 14 दीर्घ मात्राएँ और 29 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

जह कणयमग्गितवियं पि कणयसहावं ण तं परिच्चयदि।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं।। 184।।

(गाथा–143, 184, 373)

14. सिद्धि–इस गाथा में 13 दीर्घ मात्राएँ और 31 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

असुहो सुहो व रसो ण तं भणदि रसय मं ति सो चेव।
ण य एदि विणिग्गहिदुं रसणविसयमागयं दु रसं।। 378।।

इन गाथा छन्दों के अतिरिक्त समयसार में 'उग्गाहा' और 'अनुष्टुप्' छन्दों का

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

भी प्रयोग हुआ है। यथा–

उग्गाहा–इस छन्द में दोनों चरणों में 30+30 मात्राएँ होती हैं। यथोक्तम्–

पुव्वद्धे-उत्तद्धे मत्ता तीसं ति सुहअ संभणिआ।

सो उग्गाहो वुत्तो पिंगल कइ दिट्ठ सट्ठि मत्तंगो।। प्राकृत पैंगलम् हि० 68।।

S S S I S S S S S S S I III S S S

यथा– एदाहि य णिव्वत्ता, जीवट्ठाणादु करणभूदाहिं।

IISSI S I I S S S S IS S I S S S

पयडीहि पोॅग्गलमईहिं ताहिं कहं भण्णदे जीवो।। 66।।

अनुष्टुप्–श्लोके षष्ठं गुरू ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।

द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययो:।।

अर्थ:–सब चरणों में छठा गुरु और पाँचवाँ वर्ण लघु होता है। दूसरे और चौथे पाद में सातवाँ वर्ण लघु होता है और पहले एवं तीसरे पाद में गुरु।

चेदा दु पयडीयट्ठं उपज्जदि विणस्सदि।

पयडीव चेदयट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि।। 312।।

—(अनुष्टुप् 58, 312-315 में भी)

प्रवचनसार–इस ग्रन्थ में 92 (ज्ञानाधिकार) +108 (ज्ञेयाधिकार) +75 (चारित्राधिकार) =275 गाथाएँ हैं। इसमें भी गाथा के कई भेद हैं–

1. बुद्धि–इस गाथा में 25 दीर्घ मात्राएँ और 7 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

आदा णाणपमाणं, णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं।

णेयं लोगालोगं, तम्हा णाणं तु सव्वगदं।। 1/23।।

(गाथा–23, 27, 38, 56, 60, 67, 102)

2. लज्जा–इस गाथा में 24 दीर्घ मात्राएँ और 9 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

तम्हा णाणं जीवो, णेयं दव्वं तिहा समक्खादं।

दव्वं ति पुणो आदा, परं च परिणाम-संबद्धं।। 1/36।।

(गाथा–36, 37, 38, 61; ज्ञे० 4, 43, 53, 55, 85, 106, चा० 10)

3. विद्या–इस गाथा में 23 दीर्घ मात्राएँ और 11 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

सोक्खं वा पुण दुक्खं, केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं।

जम्हा अदिंदियत्तं, जादं तम्हा दु तं णेयं।। 1/20।।

(गाथा ज्ञा० 3, 4, 7, 20, 40, 56, 86 ज्ञे० 9, 16, 33, 37, 42, 78, 81, 87, 97 चा० 35, 52)

4. क्षमा–इस गाथा में 22 दीर्घ मात्राएँ और !3 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

णाणी णाणसहावो, अट्ठा णेयप्पगाहि णाणिस्स।
रूवाणि व चक्खूण णेवण्णोण्णेसु वट्टंति।। 1/28।।

(गाथा ज्ञा० 8, 10, 28, 31, 34, 44, 53-55, 60, 76-78, 82, 83, 87, 91 ज्ञे० 11, 16, 32, 39, 47, 52, 54, 68-70, 79, 86, 90, 96, 106, 107 चा० 6, 31, 34, 38, 73, 74)

5. देवी–इस गाथा में 21 दीर्घ मात्राएँ और 15 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

संपज्जदि णिव्वाणं, देवासुर-मणुयरायविहवेहिं।
जीवस्स चरित्तादो, दंसण-णाणप्पहाणादो।। 1/6।।

(गाथा ज्ञा० 6, 18, 21, 29, 35, 45, 48, 51, 57, 64, 68, 70, 73, 80 ज्ञे० 3, 7, 8, 15, 22, 29, 40, 57, 61, 65, 77, 83, 94, 98, 101, 105, 108 चा० 5, 32, 33, 61)

6. गौरी–इस गाथा में 20 दीर्घ मात्राएँ और 17 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

धम्मेण परिणदप्पा, अप्पा जदि सुद्ध-संपयोगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं, सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं।। 1/11।।

(गाथा ज्ञा० 1, 5, 11, 13, 15, 16, 24, 25, 42, 47, 63, 65, 71, 81, 89, 90 ज्ञे० 3, 7, 8, 15, 22, 29, 40, 57, 61, 66, 67, 80, 82, 91, 92, 98, 103 चा० 2, 9, 12, 28, 30, 43, 48, 51, 54, 60, 63, 67)

7. धात्री–इस गाथा में 19 दीर्घ मात्राएँ और 19 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

असुहोदएण आदा, कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।
दुक्ख-सहस्सेहिं सदा, अभिंधुदो भमदि अच्चंतं।। 1/12।।

(गाथा ज्ञा० 2, 12, 39, 46, 58, 59, 62, 66, 67, 69, 79, 84 ज्ञे० 1, 2, 6, 13, 20, 21, 24, 30, 31, 34, 35, 62, 63, 71-73, 75, 88, 104 चा० 4, 11, 15, 16, 22, 24, 26, 27, 40, 50, 53, 62, 69, 71, 72, 75)

8. चूर्णा–इस गाथा में 18 दीर्घ मात्राएँ और 21 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

पक्खीण-घादिकम्मो, अणंतवर-वीरिओ अधिकतेजो।
जादो अदिंदिओ सो, णाणं सोक्खं च परिणमदि।। 1/19।।

(गाथा ज्ञा० 19, 22, 23, 30, 33, 41, 75, 85, 88, 92 ज्ञे० 10, 14, 23, 27, 46, 58, 59, 64, 88, 93 चा० 13, 14, 17, 20, 21, 37, 39, 49, 58, 66)

9. छाया–इस गाथा में 17 दीर्घ मात्राएँ और 23 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

भंग-विहीणो य भवो, संभव-परिवज्जिदो विणासो हि।
विज्जदि तस्सेव पुणो, ठिदि-संभव-णास-समवायो।। 1/17।।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

(गाथा ज्ञा० 9, 17, 49, 50, 74 ज्ञे० 12, 25, 26, 95 चा० 3, 18, 19, 23, 36, 46, 47, 65)

10. कान्ति–इस गाथा में 16 दीर्घ मात्राएँ और 25 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

गेण्हदि णेव ण मुंचदि, ण परं परिणमदि केवली भगवं।
पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं।। 1/32।।

(गाथा ज्ञा० 14, 32, 43, 72 ज्ञे० 5, 50, 74 चा० 1, 8, 25, 41, 59, 64)

11. महामाया–इस गाथा में 15 दीर्घ मात्राएँ और 27 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

ण वि परिणमदि ण गेण्हदि, उप्पज्जदिणेव तेसु अट्ठेसु।
जाणण्णवि ते आदा, अबंधगो तेण पण्णत्तो।। 1/52।।

(गाथा ज्ञा० 52 चा० 44, 55, 68, 70)

12. कीर्ति–इस गाथा में 14 दीर्घ मात्राएँ और 29 ह्रस्व मात्राएँ होती हैं। यथा–

अविदिद-परमत्थेसु य विसय-कसायाधिगेसु पुरिसेसु।
जुट्ठं कदं व दत्तं, फलदि कुदेवेसु मणुजेसु।। 3/53।।

इसके अतिरिक्त 'गहू' छन्द का भी प्रयोग हुआ है। 'गाहू' छन्द में 12, 15, 12, 15 मात्राएँ होती हैं। यथा– (गाथा चा० 7, 42)

दंसण-णाण-चरित्तेसु, तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु।
एयग्गगदो त्ति मदो, सामण्णं तस्स परिपुण्णं।। 3/42।।

(शेष भाग अगले अंक में)

नोट:–ये समस्त छन्दलक्षण 'प्राकृत पैंगलम्' के आधार पर वर्णित एवं वर्गीकृत हैं।

**

जहा लोगे तहा सत्थे–

प्रदीपेनार्च्चयेदर्कमुदकेन महोदधिम्।
वागीश्वरं तथा वाग्भिर्मगलेन च मंगलम्।।

–(प्राकृतपंचसंग्रह वृत्ति, पृ० 543)

अर्थ:–सूर्य की पूजा दीपक से, समुद्र की पूजा जल से, सरस्वती की पूजा वाणी से की जाती है; इसप्रकार मंगल द्रव्य से ही मंगलवस्तु को पूजा जाता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थ : भारतीय इतिहास के प्रामाणिक दस्तावेज

—प्रो० डॉ० राजाराम जैन

[ग्रन्थों की प्रशस्तियों में उल्लिखित सैकड़ों कवि एवं उनके द्वारा विरचित हजारों ग्रन्थों के मिलने से हम लोग सहज में ही कह देते है। कि 'वे नष्ट हो गए।'' बहुत सम्भव है कि समय के फेर से तथा हमारी असावधारी से कुछ ग्रन्थ नष्ट हो भी चुके हों, किन्तु मुझे विश्वास है कि अधिकांश ग्रन्थ अभी भी देश-विदेश के एकान्त अंधेरे कोनों में बिखरे पड़े अपने उद्धारकों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सहृदय जिनवाणी भक्तों एवं साहित्य-रसिकों को चाहिए कि वे भारत के अतिरिक्त विदेशों में जर्मनी, फ्रांस, इटली, ब्रिटेन, अमेरिका, चीन, जापान, तिब्बत, नेपाल, ईरान, मिश्र तथा दक्षिण-पूर्व के एशियाई देशों एवं श्रीलंका के प्राच्यशास्त्र-भाण्डारों में उनकी खोज करें —प्रधान सम्पादक]

पाण्डुलिपियाँ अथवा अप्रकाशित प्राचीन ग्रन्थ सामाजिक गौरव के प्रामाणिक दस्तावेज माने जाते हैं। क्योंकि उनकी प्रशस्तियों एवं पुष्पिकाओं में पूर्ववत्ती आचार्यों एवं उनके द्वारा लिखित अनेक जैनग्रन्थों के नाम तो मिलते ही है, समकालीन नगरश्रेष्ठियों सार्थवाहों, राजाओं, जैनमूर्ति एवं मन्दिर-निर्माताओं तथा साहित्यरसिक जैनश्रावकों के प्रेरक परिचय भी मिलते है। —ये सभी सन्दर्भ हमारे गौरवपूर्ण इतिहास के अनेक प्रामाणिक सूत्र प्रदान करने में सक्षम होते हैं। इसीलिए हमारे विद्यागुरु प्रो० डॉ० हीरालाल जी जैन कहा करते थे कि "हम जब भी, जहाँ भी जावें, वहाँ के जैनमन्दिरों के दर्शनकर वहाँ की परिक्रमा अवश्य किया करें; क्योंकि प्राय: वहाँ ही जिनवाणी के प्राचीन जीर्ण-शीर्ण ग्रन्थ आधे या पूरे बोरों में भरकर उन्हें जल-समाधि देने के निमित्त रखे रहते हैं। समाज के अधिकांश लोग यह नहीं समझते कि प्राचीनाचार्यों की कठोर साधना एवं परिश्रम से लिखित पुरानी पोथियाँ या पाण्डुलिपियाँ ही जैनसमाज की असली धरोहर हैं; क्योंकि उनमें हमारे इतिहास एवं संस्कृति तथा आगम-सिद्धान्त, आचार तथा अध्यात्म सभी कुछ वर्णित रहते हैं।''

डॉ० साहब स्वयं जब अमरावती में प्रोफेसर थे, तब वे एक गाँव में गए। वहाँ के जैनमन्दिर के दर्शन किए और परिक्रमा करते समय उन्होंने वहाँ एक बोरे से झांकते हुए सुन्दर लिपिवाले कुछ फटे-पुराने पन्नों को देखा। एक पन्ने को जब ध्यान से पढ़ा, तो वह जैन रहस्यवादी-काव्य से सम्बन्धित पृष्ठ निकला। उन्होंने जिज्ञासावश पूरा बोझा वहीं उड़ेल दिया, तो उसमें से तुड़े-मुड़े पूरे ग्रन्थ के पन्ने ही मिल गए। वह मुनि रामसिंहकृत अपभ्रंश-भाषा में लिखित 'पाहुडदोहा' नाम का ग्रन्था था, जिसका उन्होंने बाद में सम्पादन-अनुवाद किया और जिसे कारंजा (अकोला) की जिनवाणी-भक्त समाज ने प्रकाशित किया। उसके तुलनात्मक अध्ययन से विदित हुआ कि सन्त कबीर का रहस्यवाद उक्त ग्रन्थ से प्रभावित था।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वर्तमान में यह ग्रन्थ अनेक विश्वविद्यालयों के पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकृत है।

न जाने कितने ऐतिहासिक महत्त्व के ग्रन्थरत्न हमारी असावधानी तथा हमारे ही अज्ञान के कारण दीमक एवं चूहों के भोजन बन गए। कितने शास्त्रों को जलाकर विदेशी आक्रान्ताओं ने भोजन पकाया। विदेशी लोग कितने ही ग्रन्थ यहाँ से चुराकर ले गए।

प्रो० डॉ० वी० राघवन् ने एक बार सर्वेक्षण किया था और लिखा था कि भारत की ताडपत्रीय एवं कर्गलीय (कागज की) लगभग 50000 से ऊपर हस्तलिखित दुर्लभ अप्रकाशित पाण्डुलिपियाँ विदेशों में चली गई हैं, जिनमें से अकेले बर्लिन (जर्मनी) में ही लगभग 35000 जैन एवं जैनेतर पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं।

सन् 1974-75 में दिल्ली में 'वीर निर्वाण भारती' सम्मान ग्रहण करने के बाद जब मैं पूज्य मुनिश्री विद्यानन्द जी की सेवा में बैठा था, उसी समय प्रो० (डॉ०) ए०एन० उपाध्ये जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० आल्सडोर्फ को लेकर उनके पास पधारे। उनका परिचय मुनिश्री को देते हुए उपाध्ये जी ने बताया कि डॉ० आल्सडोर्फ के पितामह एवं पिता जैन-साहित्य पर कार्य करते रहे और इन्होंने स्वयं भी सारा जीवन जैन-साहित्य की सेवा में व्यतीत कर दिया है। आचार्य वट्टकेरकृत 'मूलाचार' की भारतीय प्राचीनतम मूल पाण्डुलिपि इनके पास है। ये उसी पर शोधकार्य कर रहे हैं। मुनिश्री तथा उपाध्ये जी को इस बात का बड़ा दु:ख था कि 'मूलाचार' की मूल पाण्डुलिपि हमारे बीच न रहकर, वह सात समुद्र पार चली गई। किन्तु उन्होनें यह भी कहा कि "वह हमारे पास नहीं है, उसका हमें दु:ख अवश्य है; किन्तु यदि वह भारत में रहती, तो क्या शायद हम लोग उसे उतनी सुरक्षा प्रदान कर पाते, जितनी सुरक्षा उसे जर्मनी में मिल रही है?''

लगभग 3-4 वर्ष पूर्व मुझे पेरिस से एक पार्सल मिला था। मैं आश्चर्यचकित रह गया कि पेरिस में ऐसा कौन सा सहृदय व्यक्ति है, जो मुझे जानता है और जिसने यह उपहार भेजा? उसे खोलकर देखा, तो उसमें से निकली महाकवि रइधूकृत अपभ्रंश के 'श्रीपालचरितकाव्य' की पेरिस में सुरक्षित पाण्डुलिपि की सुन्दर फोटोप्रति, जिसकी मुझे एक लम्बे अरसे से खोज थी। प्रेषिका एक प्रोफेसर महिला थी। सन् 1964-65 में रइधू-सम्बन्धी मेरा कोई लेख तथा मेरे द्वारा सम्पादित प्रकाशित रइधूकृत 'अणथमिउकहा' की एक प्रति किसीप्रकार उसके हाथ लग गई होगी। उसी लघु पुस्तिका ने उसे बहुत प्रभावित क्यिा और उसके आधार पर उसने स्वयं कुछ लेख भी लिखे। इनकी सूचनाओं के साथ उसने 'श्रीपालचरित' की उक्त फोटोकापी भी मुझे भेजी और भारत आकर उसने मुझसे भेंट करने की अभिलाषा भी व्यक्त की।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आज हम कहते हैं कि हमारा 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' नामका ग्रन्थ खो गया है। अपभ्रंश-ग्रन्थों की प्रशस्तियों में उल्लिखित सैकड़ों कवि और उनके द्वारा विरचित हजारों ग्रन्थों के न मिलने से हम लोग सहज ही में कह देते है कि 'वे नष्ट हो गए।'' बहुत सम्भव है कि समय के फेर से तथा हमारी असावधानी से कुछ ग्रन्थ नष्ट भी हो चुके हों, किन्तु मुझे विश्वास है कि अधिकांश ग्रन्थ नष्ट नहीं हुए होंगे। कुछ ग्रन्थ तो विदेशों में विशेषकर जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन एवं मध्य एशियाई देशों में सुरक्षित है; वहाँ उनकी खोज करना आवश्यक है।

वर्तमान में हमारे समाज के अनेक श्रीमन्त, धीमन्त एवं भट्टारकगण बहुबार विदेशयात्राएँ कर रहे हैं। यदि वे अपने भ्रमण-कार्यक्रमों में से एक कार्यक्रम विदेशों में जैन पाण्डुलिपियों की खोज को भी बना लें, तो वह जैनसाहित्य (जिनवाणी)की बड़ी भारी सेवा होगी।

हमारे यहाँ ही देश के कोने-कोने में जैन मन्दिरों एवं व्यक्तिगत संग्रहालयों में अगणित जैन-पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं, जिनका पूरा लेखा-जोखा अभी तक नहीं हो पाया है। क्या ही अच्छा हो कि प्रकाशित एवं उपलब्ध ग्रन्थों को बार-बार प्रकाशित करने की अपेक्षा अप्रकाशित ग्रन्थों की खोज, सूचीकरण, सुरक्षा तथा आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति सेउनका सम्पादन; हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य देश-विदेश की भाषाओं में अनुवाद तथा मूल्यांकन के साथ प्रकाशन हो तथा लागत मूल्य पर उनकी बिक्री की जाय, तो जैन-साहित्य (जिनवाणी) की सुरक्षा एवं प्रचार-प्रसार तो होगा ही, उसे विश्वविद्यालय स्तर पर पाठ्यग्रन्थों के रूप में भी स्वीकृत कराया जा सकेगा। विदेशों में जैनसाहित्य की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति भी इस माध्यम से हो सकेगी।

कुछ महत्वपूर्ण उपलब्ध जैन पाण्डुलिपियाँ

हमारी जो सहस्रों पाण्डुलिपियाँ नष्ट हो चुकी हैं अथवा जो सात समुद्र पार विदेशों अथवा हिमालय को लाँघकर चीन और तिब्बत आदि देशों में जा चुकी है, वे तो अब अपने-अपने भाग्य पर जीवित रहने या नष्ट हो जाने के लिए विवश हैं; उनके विषय में कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं। किन्तु अभी जो पाण्डुलिपियाँ भारत में उपलब्ध हैं, उनका भी पूरा-पूरा वैज्ञानिक सूचीकरण नहीं हो पाया है; मूल्यांकन एवं प्रकाशन की बात तो अभी योजनों दूर हैं।

इधर कुछ स्थानों में सूचीकरण के प्रसंगों में कुछ ऐसी पाण्डुलिपियाँ प्रकाश में आई हैं, जो शोधार्थियों के लिए नया प्रकाश देने में समर्थ हैं। इनमें से एक

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पाण्डुलिपि है– श्रावक निर्मलदास कृत 'भाषा-पंचाख्यान' (अर्थात् पांच आख्यानवाली रचना) जिसमें लगभग 2000 पद्य है। उसकी आदि-प्रशस्ति में उसे 'पंचतंत्र' तथा अन्त्य-प्रशस्ति में 'पंचाख्यान-भाषा' कहा गया है और यह बतलाया गया है कि जो व्यक्ति इस पंचाख्यान-ग्रन्थ का अध्ययन करेगा, वह राजनीति में निपुण हो जायगा। यथा– **सुनो सुनो श्रावक सकल नर सहाय मिल भविक सब।**

तुम्हारे प्रसाद यह उच्चरों पंचतंत्र की कथा इव।।

–(आदि प्रशस्ति का अंश)

पंचाख्यान कहैं प्रकट ज्यों जाने नर कोय।

राजनीति में निपुण हुवै पृथ्वीपति सो होय।।–*(अन्त्य प्रशस्ति का अंश)*

इस पाण्डुलिपि में लेखनकाल नहीं दिया गया है, किन्तु इसका प्रतिलिपिकाल वि०सं० 1754 (1697 ईस्वी) है।[1] अत: श्रावक निर्मलदास का रचनाकाल इसके कुछ पूर्व का सिद्ध होता है।

उक्त प्रशस्ति में 'पंचतंत्र' का अपरनाम 'पंचाख्यान' का यह उल्लेख हमारा ध्यान जर्मनी के प्राच्यविद्याविद् **प्रो० जॉन हर्टेल** के उस कथन की ओर आकर्षित करता है, जो उन्होंने लगभग 6-7 दशक पूर्व पं० विष्णु शर्मा कृत 'पंचतंत्र' का सम्पादन करते समय लिखा था। प्रो० हर्टेल के कथनानुसार **"वर्तमान में उपलब्ध संस्कृत-पंचतंत्र के पूर्व किसी जैन लेखक द्वारा लिखित 'प्राकृत-पंचक्खाण' नामक जैन कथाग्रन्थ लोकप्रिय था।"** उनके मतानुसार **"संस्कृत पंचतंत्र उसी के आधार पर लिखित अथवा अनूदित प्रतीत होता है।"**

संस्कृत पंचतंत्र की लोकप्रियता भारत में ही नहीं, बल्कि संसार के सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित प्रमुख देशों में भी रही। उत्तर मध्यकाल में उसकी राजस्थानी, गुजराती एवं हिन्दी अनुवाद में तो हुए ही; विदेशी भाषाओं यथा–अरबी, फारसी, इटालियन, फ्रेंच, जर्मन, रूसी तथा अंग्रेजी में भी उसके अनुवाद किए गए हैं। इससे यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि उसने विश्व-कथासाहित्य को भी प्रभावित किया गया। जर्मनी में अनेक भारतीय पाण्डुलिपियाँ ले जाई गई हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि अकेले बर्लिन में ही लगभग 35000 भारतीय जैन एवं जैनेतर पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित है। और यह असम्भव नहीं कि 'प्राकृत पंचक्खाण' भी बर्लिन में सुरक्षित हो और प्रो० हर्टेल के दृष्टिपथ से भी वह सम्भवत: गुजर चुका हो?

बहुत सम्भव है कि श्रावक निर्मलदास ने उसी 'प्राकृत पंचक्खाण' का हिन्दी पद्यानुवाद किया हो? उसकी खोज आवश्यक है, क्योंकि उसकी उपलब्धि से जैन कथा-साहित्य के प्राचीन इतिहास पर कुछ नया प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

फारसी में जैन-साहित्य

यह तो सर्वविदित ही है कि जैनियों ने अपनी व्यावहारिक सूझ-बूझ, वाणिज्य-कौशल, सार्वजनिक कार्यों के लिए दान देने में उदारता, लेखन-चातुर्य, सत्यनिष्ठा, विश्वसनीयता तथा शुद्धाचरण से अनेक हिन्दू तथा मुस्लिम शासकों को प्रभावित किया है। उसकी सूचनाएँ मध्यकालीन जैन पाण्डुलिपियों की प्रशस्तियों तथा आइने-अकबरी, जहाँगीरनामा, शाहजहाँनामा तथा अन्य अनेक शाही-फरमानों से मिलती है। उनके अनुसार श्रावकों तथा जैन साधुओं के लिए उनकी ओर से श्रद्धा-समन्वित सम्मान प्राप्त था। समय-समय पर मुस्लिम बादशाहों की ओर से उन्हें खुश्फहम,[2] नादिरज्जमाँ,[3] जहाँगीरपसन्द,[4] महामहोपाध्याय[5] जैसी उपाधियों से विभूषित किया गया। इसप्रकार के सम्मानप्राप्त साधकों में हीरविजयसूरि, भानुचन्द्र सिद्धिचन्द गणि, विजयसेनसूरि, उपाध्याय जयसोम, साधुकीर्ति, दयाकुशल आदि के नाम अग्रगण्य है। भानुचन्द्र सिद्धिचन्द्र ने अकबर एवं जहाँगीर के विनम्र निवेदन पर फारसी भाषा भी सीखी थी तथा अनेक जैनकृतियों का फारसी अनुवाद भी किया था, जिनमें 'आदित्य सहस्रनाम स्तोत्र' तथा 'भक्तामर-स्तोत्र' भी थे। सम्राट् अकबर समय-समय पर उनसे इन कृतियों का सस्वर-पाठ सुनताथा। जैनसाधुओं के अनुरोध पर इन मुस्लिम शासकों ने जैनमन्दिरों को ध्वस्त न करने, पर्यूषण में प्राणिहत्या तथा माँसाहार न करने तथा जजिया-कर माफ कर देने के लिए शाही फरमान भी जारी किए थे।

कुछ समय पूर्व गुजरात के एक शास्त्रभण्डार में एक ऐसी लघु पाण्डुलिपि भी मिली है, जिसमें फारसी-भाषा में तीर्थंकर ऋषभदेव का स्तवन किया गया है। उसके लेखक पं० उदयसमुद्र हैं। इस पाण्डुलिपि पर लेखनकाल अंकित नहीं है, किन्तु लिपि-शैली तथा कागज आदि देखने वे वह 17वीं सदी की प्रतीत होती है। उसमें फारसी के साथ-साथ कुछ अरबी एवं देशी अपभ्रंश के शब्दों का मिश्रण भी मिलता है। उसके 5वें पद्य का मूलपाठ इसप्रकार है।

महमदमालिममंतरा ईब्राहिम रहमाणु।
ईह तुरा कुतावीआ मे दिहि मुक्यल्फरमाणु।। 5।।

उक्त पाण्डुलिपि में इसकी संस्कृत टीका भी दी गई है, जिसमें उक्त पद्य का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। वह निम्नप्रकार है–

त्वं महमदो विष्णुः ईब्राहिमो ब्रह्मा रहमानो महेश्वरो त्वमेव। अथ 'रह्'त्यागे इति चौरादिको विकल्पेनंतो' धातुः। रहति रागद्वेषौ त्यजतीत्येवं

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शक्त: 'शक्तिवयस्ताच्छील्ये' इति शानङ्, 'आन्मोना' आने मोन्त: णत्वे कृते रहमाण इति रूपं। सर्वे पि देवास्त्वमेव। आलिम: पण्डितो मम त्वं। इहं एषो हं, तुरा तव कुतावीआ लेखशालिक:। मे मे दिहि मम फरमाण आदेशं देही, कि करवाणि अहं। पण्डितो हि शिष्यस्यादेशं ददाति इति भाव:।[6] इस पद्य का हिन्दी अनुवाद निम्नप्रकार होगा–

हे प्रभु ! तुम्हीं महमूद अर्थात् प्राणिमात्र के रक्षक विष्णु हो, तुम्हीं ईब्राहीम अर्थात् प्राणिमात्र के मार्गदर्शक ब्रह्मा हो और तुम्हीं रहमान अर्थात् प्राणियों की भवबाधाओं के नाशक महेश्वर हो, तुम्हीं देवाधिदेव हो, तुम्हीं पण्डित हो और मैं तुम्हारा लेखक-सेवक हूँ। अत: तुम तत्काल ही मुझे आज्ञा दो कि मैं क्या करूँ?

हमारा विस्मृत साहित्य

अपभ्रंश के महाकवि स्वयम्भू (आठवीं सदी) का 'रिट्ठणेमिचरिउ' दीर्घ प्रतीक्षा के बाद अब छपना प्रारम्भ हुआ है। उसकी प्रशस्ति में उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयम्भू ने अपने पूर्ववर्त्ती संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश के लगभग 70 ऐसे महाकवियों के नामोल्लेख किए हैं, जिनमें से अधिकांश विस्मृति के गर्भ में जा चुके हैं।

राजा भोज के राज्यकाल में 11वीं सदी के कुन्दकुन्दान्वयी कवि नयनन्दी ने वहाँ के जिनवर-विहार में बैठकर अन्य ग्रन्थों के साथ ही 58 सन्धिवाला अपभ्रंश का महाकाव्य "सयलविहिविहाणकव्व'' लिखा था। इसकी मध्य की 16 सन्धियाँ अर्थात् 15 से लेकर 32वीं सन्धिक तक का अंश नष्ट हो जाने के कारण वह ग्रन्थ अपूर्ण ही रह गया है। उसकी प्रशस्ति में पूर्ववर्त्ती 33 कवियों के नामोल्लेख है, किन्तु उनमें से अधिकांश के नाम एवं उनके ग्रन्थ विस्मृत हो चुके हैं।

इसी प्रकार महाकवि वीर (10वीं सदी), श्रीचन्द्र (11वीं सदी), विबुधश्रीधर (11वीं सदी), धवल (जिन्होंने 122 सन्धियों में 'हरिवंशपुराण' की रचना की, 11वीं सदी) कवि देवचन्द्र (12वीं सदी), अमरकीर्ति (13वीं सदी) लाखू अथवा लक्ष्मण (13वीं सदी) महाकवि सिद्ध एवं धनपाल (15वीं सदी), भट्टारक यश:कीर्ति (15वीं सदी) महाकवि रइधू (15वीं-16वीं सदी), कवि माणिक्यराज (16वीं सदी), भट्टारक श्रुतकीर्ति (16वीं सदी), कवि महिन्दु या महाचंद (16वीं सदी) पण्डित भगवतीदास (17वीं सदी), आदि कवियों ने भी अपनी-अपनी रचनाओं में ऐसे दर्जनों-दर्जनों पूर्ववर्त्ती ग्रन्थकारों एवं उनके ग्रन्थों के उल्लेख किए हैं, जो आज विस्मृति के गर्भ में हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

भौगोलिक दृष्टि से पाण्डुलिपियों का महत्व

इस शताब्दि के प्रारम्भ से ही देश-विदेश के प्राच्यविद्याविदों ने प्राचीन भारतीय साहित्य के आधार पर प्राच्य भारतीय भूगोल का अध्ययन किया है। उस दृष्टि से वैदिक एवं बौद्ध साहित्य का तो मूल्यांकन हुआ; किन्तु जैन साहित्य उपेक्षित ही रह गया। यहाँ तक कि विद्वानों ने कालिदासकृत 'मेघदूत' के मार्ग का भी पता लगा लिया, जबकि उनसे लगभग 4-5 सौ वर्ष पूर्व के आचार्य कुन्दकुन्द के भौगोलिक वर्णन की उपेक्षा कर दी गई। कुन्दकुन्द ने अपने निर्वाणकाण्ड के माध्यम से पर्वतराज हिमालय के गर्वोन्न्त भव्यभाल के समान कैलाश पर्वत से लेकर जम्मू एवं कश्मीर तक, गुजरात के गिरनार, दक्षिण के कुन्थलगिरि, पूर्वी भारत से सम्मेदगिरि, दक्षिण-पूर्व की कोटिशिला के चतुष्कोण के बीचोंबीच लगभग 36 प्रधान नगरों, तीर्थों, पर्वतों एंव नदियों के उल्लेख कर समकालीन भारतीय भूगोल का वर्णन किया था। अभी कुछ समय पूर्व एक पाण्डुलिपि दृष्टिगोचर हुई है, जिसमें भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति की रेशन्दीगिरि से श्रवणबेलगोल तक की पैदल तीर्थयात्रा का वर्णन है। उक्त दोनों तीर्थों के मध्य में जितने भी जैनतीर्थ थे; जैसे पूर्व केउदयगिरि-खण्डगिरि तथा कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश एवं बिहार के अधिकांश तीर्थक्षेत्रों का उन्होंने संक्षिप्त वर्णन किया है। उक्त भट्टारक का समय 18वीं सदी के आसपास है। ऐसी रचनाओं का तत्काल प्रकाशन आवश्यक है, क्योंकि वे हमारे लिए महत्त्वपूर्ण दस्तावेज सिद्ध हो सकती हैं और बहुत सम्भव है कि आज दिगम्बर जैन तीर्थों को लेकर दूसरों के द्वारा जो नए-नए झगड़े खड़े किए जा रहे हैं, उनके समाधान में ये ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध हो सकें?

एतद्विषयक उपलब्ध श्वेताम्बर साहित्य के बहुल भाग का भी मूल्यांकन हो चुका है; किन्तु दिगम्बर जैन साहित्य अभी तक उपेक्षित ही पड़ा हुआ है।

उत्तर मध्यकालीन पाण्डुलिपियों में उपलब्ध मलिकवाहण, मम्मणवाहण, ब्रोहडोट्ट हरिग्रहपुर जैसे नगर अभी भी अपरिचित ही हैं; जबकि भारतीय भूगोल-शास्त्रियों को निम्न नगरों के पूर्व नाम ज्ञात हो चुके हैं—बडउद्र (बड़ौदा), भृगुपुर (भरुच), देवगिरि (दौलताबाद), आशापल्ली-कर्णवती- (अहमदाबाद); प्रल्हादनपुर (पालनपुर-उत्तर-गुजरात), कंगडकदुर्गनगरकोट्ट (कांगड़ा-कोट, कांगड़ा) त्रिगर्त (जालन्धर)।

कुछ उत्तर-मध्यकालीन पाण्डुलिपियों से यह भी जानकारी मिलती है कि कांगड़ा के आसपास दिगम्बर तथा श्वेताम्बर मन्दिर थे। अब विदित हुआ है कि बाद

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

में श्वेताम्बर मन्दिर तो बच गए; किन्तु दिगम्बर मन्दिर नष्ट हो गए।

इसप्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन पाण्डुलिपियाँ हमारी सबसे बहुमूल्य किन् सर्वाधिक अपेक्षित धरोहर हैं। कदाचित् हम समय रहते सावधान हो जायें, और इ विनष्ट होती पूँजी की रक्षा कर सकें।

सन्दर्भग्रंथ सूची

1. दे०, 'साहित्य-सन्देश' (दिस० 1956, पृ० 252-253) में प्रकाशित श्री अगरचन्द नाहटा का लेख।
2. दे०, अकव्वर सुरत्राण हृदयाम्बुजषट्पदः।
   दधानः खुश्फहमिति विरुदं शाहिनार्पितम्।। —*भक्तामरस्तोत्रवृत्ति (आदि-प्रशस्ति)*
3. वही० (जहांगीर द्वारा प्रदत्त विरुद जिनशतकटीका, अन्तिम पुष्पिका)।
4. जिनशतकटीका प्रशस्ति।
5. काव्यप्रकाशखण्डन की प्रशस्ति।
6. प्रतीत होता है मानतुंगसूरि कृत भक्तामर स्तोत्र की पद्य संख्या 25 से उक्त पद्य प्रभावित है— यथा—
   बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्,
   त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात्।
   धातासि धीर शिव मार्ग विधेर्विधानात्,
   व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि।। 25।।
7. सिरिवालचरिउ, 8/6/1-8।

**

रुचिः प्रवर्तते यस्य जैनशासन भासने।
हस्ते तस्य स्थिता मुक्तिरिति सूत्रे निगद्यते।।

—*उत्तरपुराण: 76/422*

अर्थ:—भगवान् जिनेन्द्र के शासन की प्रभावना करने की जिस भव्यजीव की रुचि/इच्छा प्रवर्तित होती है, उसके लिए मुक्ति (मोक्ष) तो 'हाथ में ही रखी है' — ऐसा सूत्र में कहा गया है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रेरक व्यक्तित्व

डॉ० मण्डन मिश्र : एक परिचय

—डॉ० सुदीप जैन

डॉ० मण्डन मिश्र का जन्म 7 जून 1929 ई० को जयपुर से 50 किलोमीटर दूर हणूतिया नामक गाँव में हुआ। आपके पिता पं० श्री कन्हैयालाल मिश्र कर्मकाण्ड

के अच्छे विद्वान् हैं। डॉ० मिश्र की प्रारम्भिक शिक्षा 'अमरसर' और उच्च शिक्षा 'जयपुर' में हुई। आपने 'मीमांसा' और साहित्य' में सर्वोत्तम श्रेणी में आचार्य, संस्कृत में सर्वोत्तम श्रेणी में एम०ए० तथा राजस्थान विश्वविद्यालय से 'मीमांसा-दर्शन का समालोचनात्मक इतिहास' विषय में पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की।

सामाजिक सेवायें:—डॉ० मिश्र ने महाराजा संस्कृत कालेज, जयपुर में अध्यापक के रूप में सेवायें प्रारम्भ की। वहीं व्याख्याता और प्रोफेसर के रूप में पदोन्नत हुए। आपने सन् 1947 ई० में पुरुषार्थियों के बड़ी संख्या में जयपुर आने पर उनको स्थानीय जनता और व्यवसाय में जमाने की दृष्टि से 'भारतीय साहित्य विद्यालय' की स्थापना की, जिसके माध्यम से अनेक रात्रिशालायें चलाकर 20 हजार से अधिक सिन्धी भाई-बहिनों को हिन्दी सिखाने का कार्य किया। यह डॉ० मिश्र की समाजसेवा की श्रीगणेश था। 'राजस्थान भारत सेवक समाज' के सचिव, संयुक्त-संयोजक के रूप में आपने प्रदेश के युवकों में नई जागृति पैदा की और उसी के माध्यम से 'भारत सेवक समाज' के अध्यक्ष, पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे देश और प्रदेश के वरिष्ठतम नेताओं से सम्पर्क करने के लिए 'भारत साधु समाज' की स्थाना के उद्‌देश्य सेश्री गुलजारीलाल नन्दा तथा माणिक्यलाल वर्मा के नेतृत्व में नाथद्वारा में 'अखिल भारत साधु सम्मेलन' तथा सन् 1959 ई० में भीलवाड़ा (राजस्थान) में 'अखिल भारतीय भारत सेवक समाज' का अधिवेशन पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में आयोजित किया। डॉ० मिश्र के रूप में एक ऐसा व्यक्तित्व उभरकर सामने आया; जो संस्कृत में विद्वत्ता के साथ-साथ समाजसेवा और महनीय नेताओं से सम्पर्क के कारण लेखन, भाषण, संगठन तथा प्रशासन कौशल के साथ-साथ सामाजिक क्षेत्र में भी एक अत्यन्त सुदृढ़ आधारस्तम्भ

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

लेकर विकसित हुआ। डॉ० मिश्र उस समय 'राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन' के भी मंत्री थे और उनके प्रयास और श्री लक्ष्मीलाल जोशी जैसे संस्कृत मनीषियों के सहयोग से यशस्वी नेता श्री मोहनलाल सुखाड़िया के मुख्यमंत्रित्व में राजस्थान में संस्कृत के एक अलग निदेशालय की स्थापना हुई और राजस्थान विश्वविद्यालय में 'प्राच्य विद्या संकाय' प्रारम्भ करने का निर्णय लिया गया। पंजाब समस्या के प्रारम्भ में लोकनायक श्रीमती इन्दिरा गाँधी के संकेत पर डॉ० मिश्र ने एक राष्ट्रीय बुद्धिजीवी सम्मेलन का आयोजन किया, जिसका उद्घाटन श्रीमती गाँधी ने किया और वे उस सम्मेलन में तीन घण्टे के लगभग उपस्थित रहीं।

संस्कृत संस्थानों के संस्थापक:—सन् 1956 ई० में महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय जी द्वारा स्थापित संस्कृत के प्रतिनिधि संगठन 'अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' के मंत्री और सन् 1959 ई० में महामंत्री पद पर डॉ० मिश्र का चयन हुआ। 'अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' को उस समय संगठन तथा साधन-सुविधाओं की दृष्टि से एक युवा देता की आवश्यकता थी। डॉ० मिश्र ने उनमें नवजीवन का संचार किया और सभी प्रदेशों में उसकी शाखायें स्थापित की। उनके निर्देशन में 'विश्व संस्कृत शताब्दी योजना' का प्रवर्तन हुआ और देश में संस्कृत के क्षेत्र में एक नये जागरण के युग का उदय हुआ। सन् 1961 ई० में डॉ० मिश्र के प्रयासों से कलकत्ता में 'अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' का ऐतिहासिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ, जिसका उद्घाटन भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने किया। इस सम्मेलन ने संस्कृत के विकास के क्षेत्र में आधारशिला का कार्य किया और भारत की राजधानी दिल्ली में एक संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना का महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया गया। डॉ० राजेन्द्र बाबू ने सम्मेलन के तत्कालीन पदाधिकारी पंजाब के पूर्व राज्यपाल श्री विष्णु नरहरि गाडगिल और भारत के गृहराज्यमंत्री श्री बलवन्त नागेश दातार तथा प्रसिद्ध उद्योगपति साहू श्री शान्ति प्रसाद जैन को डॉ० मिश्र की सेवायें राजस्थान सरकार से माँगी गयी और उन्होंने सन् 1962 ई० में दिल्ली आकर संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना की। उस समय दिल्ली प्रशासन में संस्कृत संस्थाओं की सहायता का कोई नियम नहीं था। अधिक से अधिक एक हजार रुपये वार्षिक की सहायता प्रत्येक संस्था को दी जाती थी। डॉ० मिश्र के प्रयोसों से सभी संस्कृत विद्यालयों को प्रशासन द्वारा 95 प्रतिशत सहायता देने का निर्णय हुआ। इसके परिणामस्वरूप अब प्रत्येक संस्था को लाखों रुपये की वार्षिक सहायता प्रशासन से मिलती है। डॉ० मिश्र सब संस्थाओं को लेकर चले। सौभाग्य से कुछ समय बाद प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शास्त्री ने 'अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' की अध्यक्षता स्वीकार की और डॉ० मण्डन मिश्र पुन: इसके महामन्त्री निर्वाचित हुए। श्री शास्त्री जी के अनुरोध पर डॉ० मिश्र ने राजस्थान की 17वर्षों की सेवा और राजस्थान में सामाजिक तथा सार्वजनिक जीवन में प्रतिष्ठा के आधार पर प्रत्यक्ष दृश्यमान सत्ता की निकटता के मोह को छोड़कर संस्कृत के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। अचानक श्री शास्त्री जी के निधन के अनन्तर डॉ० मिश्र के प्रयासों से प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने डॉ० सम्पूर्णानन्द जी अनुरोध पर सम्मेलन तथा विद्यापीठ का सभापतित्व स्वीकार किया और सन् 1967 ई० में श्री शास्त्री जीं की स्मृति में श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के रूप में नाम परिवर्तन कर इसे भारत सरकार को सम्भला दिया। डॉ० मिश्र इसके संस्थापक निदेशक, प्राचार्य और इसके प्राचार्यत्व के साथ-साथ 8 वर्षों तक 'राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान' के निदेशक रहे तथा जयपुर, लखनऊ, आदि नगरों में विद्यापीठों की स्थापना अपने कार्यकाल में की। उनकी साधना से दिल्ली विद्यापीठ सन् 1989 ई० मानित विश्वविद्यालय के रूप में समुन्नत हुआ। डॉ० मिश्र इसके प्रथम संस्थापक कुलपति नियुक्त किये गये। एक व्यक्ति के द्वारा रात्रि-पाठशाला से प्रारम्भ कर 26-27 वर्षों में एक संस्था को विश्वविद्यालय के स्तर तक पहुँचना डॉ० मिश्र की एक ऐसी देन है, जिसका इस शताब्दी में संस्कृत क्षेत्र में दूसरा कोई उदाहरण नहीं है। आप ही के प्रयासों से केन्द्रीय संस्कृत, विद्यापीठ, तिरुपति को 'मानिंत विश्वविद्यालय' का स्तर प्राप्त हुआ। 'महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान' की स्थापना में आपका मौलिक योगदान है, जो भारत सरकार की एक अत्यन्त सुप्रतिष्ठित स्वयंसेवी संस्था है।

अध्यापक एवं लेखक:—एक उत्तम अध्यापक से प्रारम्भ कर लेखक के रूप में उनकी सेवायें विख्यात रही हैं। साठ से भी अधिक ग्रन्थों का सम्पादन और प्रकाशन आपके निर्देशन में हुआ है।

विदेश में सम्मान:—डॉ० मिश्र ने सन् 1984 ई० में अमेरिका में आयोजित 'विश्व संस्कृत सम्मेलन' में भारत के प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व किया और जुलाई 1993 ई० में न्यूयार्क में 'अथर्ववेद सम्मेलन' में भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए। जनवरी 1994 ई० में आस्ट्रेलिया में 'विश्व-संस्कृत सम्मेलन' में भाग लिया। आपने इटली में श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) नई दिल्ली के विशेष दीक्षान्त समारोह को सम्बोधित किया। इस समारोह में टोरिनो विश्वविद्यालय और टोरिनो नगर निगम ने आपको सम्मान पत्र, स्मृतिचिन्ह तथा पदक भेंट किये। इनके अतिरिक्त इंग्लैण्ड, फ्रांस,

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बेल्जियम, सिंगापुर, थाईलैण्ड देशों की यात्रा कर आपने संस्कृत और भारतीय संस्कृति का सन्देश प्रसारित किया। हांगकांग तथा लन्दन में अपने अन्तर्राष्ट्रीय गीता सम्मेलनों की अध्यक्षता की।

सम्मान एवं पुरस्कारः—सामान्य वर्ग से लेकर देश के महान् नेताओं और विद्वानों द्वारा डॉ० मिश्र को सम्मान प्राप्त हुये। 'दिल्ली साहित्य कला परिषद्' ने सन् 1971 ई० में उनकी संस्कृत सेवाओं के लिए उनको सम्मानित किया। भारत सरकार ने सन् 1983 ई० में उनको 'राष्ट्रपति सम्मान प्रमाणपत्र' से पुरस्कृत किया, जो आजीवन 10 हजार रुपये के वार्षिक मानदेय के साथ चलता रहेगा। उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी ने उनके ग्रन्थों पर 10 हजार रुपये का 'अखिल भारतीय शंकराचार्य पुरस्कार' श्री राजीव गाँधी के करकमलों से प्राप्त हुआ और उनके मीमांसा दर्शन तथा संस्कृत सेवाओं से सम्बद्ध सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व के आधार पर सन् 1989 ई० में संसार का सर्वोत्कृष्ट एक लाख रुपये का 'विश्व संस्कृत भारत भारती' पुरस्कार वर्तमान राष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा ने प्रदान किया। शृंगेरी के शंकराचार्य श्री अभिनव विद्यातीर्थ स्वामी जी ने उनको सन् 1966 ई० में 'विद्या-भास्कर' की उपाधि से सम्मानित किया। शृंगेरी के वर्तमान शंकराचार्य श्रीभारतीतीर्थ स्वामी जी ने अपने वर्धन्ती समारोह में 'उत्तर भारत के प्रथम विद्वान्' के रूप में वर्तमान राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा जी के कर-कमलों से स्वर्गीय राजीव गाँधी की उपस्थिति में सन् 1990 ई० में आपको पुरस्कृत कराया। जगद्गुरु रामानन्दाचार्य ने डॉ० मिश्र को 'ब्रह्मर्षि' की उपाधि प्रदान की है। दिल्ली संस्कृत अकादमी ने डॉ० मिश्र को 15 हजार रुपये के 'संस्कृत सेवा सम्मान' से विभूषित किया है। श्री मुरली मनोहर जोशी (पूर्व अध्यक्ष, भारतीय जनता पार्टी) द्वारा अपनी माता श्रीमती चन्द्रवती जोशी की स्मृति में संस्थापित दस हजार रुपये का 'प्रथम संस्कृत सेवा पुरस्कार' डॉ० मिश्र को दिया गया।

डॉ० मण्डन मिश्र श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली के संस्थापक कुलपति, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान (भारत सरकार) उज्जैन के भी सचिव रहे। भारत के प्रधानमन्त्री द्वारा नियुक्त अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय विद्या अध्ययन गोष्ठी की प्रबन्ध समिति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में राज्यपाल द्वारा नामित कार्य परिषद्, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष द्वारा राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति की कार्य-परिषद् में नामित, केन्द्रीय संस्कृत मण्डल, राष्ट्रीय संग्रहालय की कला समिति आदि अनेक प्रतिष्ठित संस्थाओं के आप सदस्य हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा नियुक्त संस्कृत और शास्त्रीय

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

भाषाओं के पैनल के संयोजक (अध्यक्ष) रहे, जो देश के विश्वविद्यालयों में भारतीय शास्त्रीय भाषाओं में शोध तथा अध्ययन के विकास के क्षेत्र में आयोग को परामर्श देता है।

डॉ० मिश्र आचार्यप्रवर श्री विद्यानन्द जी महाराज के अनुग्रह-भाजन हैं और आचार्यश्री लगभग गत दो दशकों से उनको पुरस्कार, प्रोत्साहन तथा प्रेरणा प्रदान कर आगे बढ़ाते रहे हैं। आचार्यश्री के सान्निध्य में आपको सेठ श्री लालचन्द दोशी स्मृति न्यास द्वारा प्रवर्तित शौरसेनी प्राकृत-विषयक एक लाख रुपयों का प्रथम 'आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार' प्रदान किया गया।

श्रमण संस्कृति के पुरोधाः—डॉ० मिश्र वैदिक और श्रमण संस्कृति के यशस्वी पुरोधा रहे हैं। उन्होंने राजधानी में संस्कृत विद्यापीठ की श्रीगणेश आचार्यश्री समन्तभद्र संस्कृत महाविद्यालय, दरियागंज, नई दिल्ली के प्रांगण में किया। इस विद्यापीठ की स्थापना का निर्णय प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र बाबू के सान्निध्य में कलकत्ता में आयोजित 'अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' में लिया गया, जिसके स्वागताध्यक्ष स्वर्गीय साहू शान्ति प्रसाद जैन थे। डॉ० मिश्र ने श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ में 'जैनदर्शन' और 'प्राकृत विभाग' की स्थापना की और राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के निदेशक के रूप में श्री समन्तभद्र संस्कृत महाविद्यालय को जैनदर्शन और साहित्य विषयों में आचार्य तक की मान्यता प्रदान की। आपने पूज्यपाद आचार्यश्री विद्यानन्द जी महाराज की प्रेरणा से उनके सान्निध्य में एक विशाल संस्कृत सम्मेलन का आयोजन माध्यमिक विद्यालयों में संस्कृत के स्थान की रक्षा के उद्देश्य से किया। दिल्ली विद्यापीठ में प्राकृत और जैनदर्शन पर गोष्ठी आयोजित की – जिसका उद्घाटन पूज्य आचार्यश्री ने किया। डॉ० मिश्र ने बम्बई में आयोजित समन्तभद्र शताब्दी-समारोह में अपना विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया। दिल्ली विद्यापीठ में स्थायीरूप से शौरसेनी प्राकृत साहित्य पर व्याख्यानमालाओं के आयोजन का भी निर्णय आपके कुलपतित्व में आचार्यश्री के निर्देशानुसार लिया गया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की शास्त्रीय भाषाओं के पैनल के सभापति के रूप में डॉ० मिश्र ने सभी सामान्य विश्वविद्यालयों में प्राकृतभाषा के विकास की योजनायें प्रस्तुत की – जिन पर आयोग विचार कर रहा है।

संक्षेप में डॉ० मिश्र संस्कृत, प्राकृत एवं भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा, गरिमा, महिमा और सार्वदेशिक स्वरूप की प्रतिमूर्ति हैं जिनको देश के सभी क्षेत्रों का सहयोग मिलता रहा है।

वर्तमान में आप कुन्दकुन्द भारती की परामर्शदात्री समिति के अध्यक्ष हैं तथा

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वैदिक और श्रमण संस्कृति के एक दृढ़ सेतु के रूप में सारे जीवन साधना करते रहे हैं। आपके कुलपतित्व में पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी महाराज के पथ-प्रदर्शन में दिल्ली संस्कृत, विद्यापीठ और कुन्दकुन्द भारती के अतिशय तादात्म्य स्थापित हुआ है।

संस्कृत भाषा की झोपड़ी से राष्ट्रपति भवन तक पहुँचाकर अब आप प्राकृतभाषा को भी जन-जन से लेकर राष्ट्राध्यक्ष तक के द्वारा गौरवान्वित कराने के लिए अहर्निश समर्पित हैं। सम्प्रति पदेन आप सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी जैसे विश्वविख्यात विश्वविद्यालय के कुलपति पद को सुशोभित कर रहे हैं।

**

ऋषि परम्परा–

'एको देव: सर्वभूतेषु गूढ़:' – पंचाध्यायी, 2/605

वेदान्तार्हत्सांख्यसौगतगुरुत्र्यक्षादि-सूक्तादृशो।
ब्रह्मैव स्फुरितं तथात्मकलयात्तादात्मनित्यं यत:।।
तेषां चात्मविदोऽनुरुपमखिलं स्वर्ग फलं तद्भव।
त्यस्य ब्रह्मण ईदृगेव महिमा सर्वात्म यत्तद्वपु:।।

–योगवासिष्ठ, निर्वाण प्रकरण, उत्तरार्ध 6/173/34

अर्थ:–वेदान्त, जैन, सांख्य, बौद्ध, गुरु (मीमांसक), शैव आदि दृष्टियों से विचारित ब्रह्म आत्मकला से स्फुरित है और नित्य आत्मरूप है। उन आत्म-रहस्य वेत्ताओं ने उस अखिल तत्व को अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुरूप दार्शनिक् स्वरूप प्रदान किया। इससे ब्रह्म अनेक रूप हो गया, किन्तु यह परस्पर विरोध भी उसी आत्म-तत्व का विश्लेषण होने से ब्रह्म के ही सर्वात्मवपु को बताता है, ब्रह्म की ऐसी ही महिमा है। मानो, दार्शनिकों का यह अनैक्य आत्मा को अनेकान्त-दृष्टि से निरूपित करता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्राकृत वाणी की पुकार

(प्राकृतभाषा की अस्मिता का प्रश्न जैनधर्म के स्वतंत्र अस्तित्व से जुटा हुआ है)

–सुभाषचंद्र अक्कोळे

[महान् वैयाकरण मार्कण्डेय के अनुसार 'शौरसेनी प्राकृत' समस्त प्राकृतों की मूलप्रकृति है। उसमें लिखित-साहित्य अध्यात्म, दर्शन, कला, संस्कृति, इतिहास एवं भाषाविज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत लेख के लेखक-विद्वान् ने इन्हीं तथ्यों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए प्रशासन द्वारा उसकी उपेक्षा तथा उसके साथ किए जाने वाले सौतेले व्यवहार के प्रति अपनी पीड़ा व्यक्त की है। इस दिशा में श्री कुन्दकुन्द भारती द्वारा प्राकृत के महत्त्व को मुखरित कर, उसके प्रचार-प्रसार को जनान्दोलन का रूप देने के प्रयत्न को उपयुक्त एवं एक समयानुकूल कदम बताया गया है।–*प्र० सम्पादक*]

निश्चितरूप से मालूम होता है कि प्राकृतभाषा के बारे में सम्प्रति जितनी गहराई से विचार हो रहा है, उतना विचार इसके पहले कभी नहीं हुआ होगा। इसका श्रेय किसी विद्यापीठ को या किसी राज्यशासन को नहीं दिया जा सकता है। उस पर केवल आचार्यश्री विद्यानंदजी का ही अधिकार होगा। इचलकरंजी की दक्षिण भारत जैनसभा के अधिवेशन में प्राकृतभाषा से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव सम्मिलित किये गये। हमें ध्यान में रखना चाहिये कि प्राकृतभाषा के संदर्भ में यह एक ऐतिहासिक आन्दोलन का आरम्भ है। कुछ लोग इकट्ठा होकर प्राकृतभाषा के सम्बन्ध में विचार करते हैं और साथ में केंद्रशासन को विचार करने को मजबूर करते हैं –इस घटना का कोई विशेष अर्थ हो सकता है।

दिल्ली में आचार्यश्री विद्यानंद जी के मार्गदर्शन में निर्णय हुआ कि हर साल श्रुतपंचमी के दिन को 'प्राकृत दिवस' कहकर मनाया जाय। देश में 'संस्कृत दिवस' मनाया जाता है, उसी तरह हमारे समाज की और राष्ट्र की अपेक्षा है कि हम भी 'प्राकृत दिवस' मनायें। प्राकृतभाषा के इतिहास में श्रुतपंचमी को सुवर्ण दिन माना जाता है, क्योंकि उसी दिन प्राकृतभाषा में लिखा हुआ साहित्य मूर्तस्वरूप में अस्तित्व में आया। प्राकृतभाषा में व्यक्त की जाने वाली हमारी धर्मवाणी ने भी उसी दिन ग्रंथरूप पाया। पुष्पदंत और भूतबली –इन दो आचार्यों ने षट्खंडागम की रचना पूरी की। प्राकृतभाषा में रचित यह आद्य आगम जैनधर्मियों की दृष्टि से अपना खास और अत्यंत महत्त्व रखता है। भगवान् महावीर की जो दिव्यवाणी, जो मौखिकरूप में थी, उसने भी ग्रंथरूप पाया। श्रुतदेवता की कृपा का ही यह प्रसाद है।

वर्तमानकाल में हमारे देश में विद्वज्जन संस्कृतभाषा को ही सबसे श्रेष्ठ मानते

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हैं। शायद इसी कारण बाकी सब लोग यही समझते हैं कि जो प्रतिष्ठा संस्कृतभाषा की है वह अन्य किसी भाषा की नहीं है। इसीलिए सारे शैक्षणिक संस्थान भी 'संस्कृत दिवस' मनाने में हाथ बँटाते हैं। यह स्वाभाविक भी है कि जिस भाषा में वेद, उपनिषद् और रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्य लिखे हुए हैं, उस भाषा को सब लोग परम पवित्र मानें। लेकिन 'प्राकृतभाषा भी संस्कृतभाषा जितना ही महत्त्व रखती है' —यह बात ध्यान में भी ली नहीं जाती। जिस भाषा में 'षट्खंड़ागम' जैसे ग्रंथ हैं, आचार्य कुंदकुंद का साहित्य जिस भाषा में है, वट्टकेर, यतिवृषभ, नेमिचंद्र आदि अनेक आचार्यों ने जिस भाषा में अपने ग्रंथ लिखे हैं। वह भाषा कम महत्त्व की कैसी हो सकती है? एक समय प्राकृतंभाषा ही सीता-द्रौपदी जैसी स्त्रियों की बोलचाल की भाषा थी। इसी भाषा में अनेक महाकाव्य लिंखे गये हैं। इतनी योग्यता रखनेवाली प्राकृतभाषा आज दीन क्यों बनी है? आचार्यश्री विद्यानंद जी इसी विषय पर सोच रहे हैं। जिस भाषा में श्रमण संस्कृति की प्राणधारा बह रही है, वह प्राकृतभाषा सांप्रतकाल में इस देश की जनता की प्राणप्रिय नहीं रही है।

सदियों से हुये संस्कारों के प्रभाव के कारण सब लोग यही समझते हैं कि संस्कृत 'देववाणी' है और प्राकृत 'असंस्कृत लोगों की बोलने की भाषा' है। इस मानसिकता को बदल डालने की प्रक्रिया का आरम्भ पिछली की 'श्रुतपंचमी' से हुआ है। यह आन्दोलन भाषाविज्ञान की दुनिया में निश्चितरूप से महत्त्व पायेगा। इस देश की आद्य भाषा प्राकृत ही है। मारे समाज ने अब तय किया है कि साल में एक बार श्रुतपंचमी के दिन सब लोग। द्वारा एक जगह मिलकर प्राकृतभाषा का उत्सव मनाया जाय।

प्राकृतभाषा इस देश की सबसे प्राचीन जनभाषा है। उसमें तत्त्वज्ञान, विज्ञान, कला, वाङ्मय आदि सारी ज्ञानशाखाओं का समग्र विचार किया है। फिर भी इस भाषा की ओर उचित मात्रा में ध्यान नहीं दिया जाता हे। इस भाषा में सारा ज्ञान उपेक्षित ही रहा है। साहित्य का ठीक तरह से मूल्यांकन होने की दृष्टि से विविध भारतीय भाषाओं की 'अकादमी' अस्तित्व में है। उसी तरह केन्द्रशासन को चाहिये कि प्राकृतभाषा के लिये भी एक अकादमी बनायी जाये और संस्कृतभाषा की तरह प्राकृतभाषा में भी चैतन्य-निर्माण करें।

भारत के संविधान में 27 भाषायें समाविष्ट हैं; जिनमें नेपाली, कोंकणी, मणिपुरी भाषायें है; लेकिन प्राकृत का नाम भी नहीं। इसलिये यह भी निर्णय किया गया है कि प्राकृतभाषा को पुनरुज्जीवित करने की दृष्टि से देश के संविधान की भाषाओं में सूची में प्राकृत को सम्मान का स्थान मिलना चाहिये। जहाँ पर जनता

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

का शासन (जनतंत्र) है; वहाँ यह होना अनिवार्य है। शासन अन्य सब भाषाओं के साहित्यिकों को पुरस्कार प्रदान करके सम्मानित करती है, लेकिन प्राकृतभाषा के विद्वानों को सन्मान पत्र से पुरस्कारित करने का सोचा भी नहीं गया। प्राकृतभाषा पर यह बड़ा अन्याय होता आया है। हमारी इस प्राचीनतम भाषा को हमारे राष्ट्र में सम्मान का स्थान मिलना चाहिये। उसकी इस अपमानित अवस्था को समाप्त करने के लिये हमारा यह प्रयास जारी रहेगा।

प्राकृतभाषा की यह अवस्था आचार्यश्री विद्यानंदजी को जिस तीव्रता से प्रतीत हुई उतनी वह और किसी को प्रतीत नहीं हुई। हमारे विद्वज्जन जीवन-निर्वाह का साधन समझकर ऐसी समस्याओं की ओर बीच-बीच में ध्यान देते हैं। लेकिन इस प्रश्न की गंभीरता को केवल आचार्यश्री ने ही ठीक तरह से जाना है। इस प्रश्न के रूप में उन्होंने प्राचीन श्रमण-संस्कृति के मर्म को ही स्पर्श किया है। हमारे अज्ञान से ग्रस्त और आलसी समाज को जगाने का उन्होंने पिछले 25 वर्षों में कई बार प्रयास किया। खुद उन्होंने दीक्षा लेने के बाद के 51 वर्षों में अनेक ऐतिहासिक महान् कार्य पूरे किये। इतिहास के हर पन्ने की सूक्ष्मतम हलचल उन्हें ही ठीक तरह से सुनायी देती है। इसलिये लगता है कि ऐसे कार्य के लिये उन्हीं का होना आवश्यक था। उनके चतुरस्र व्यक्तित्व के कारण वे असम्भव बातों को भी सम्भव बना सकते हैं। हर एक कार्य में उनकी प्रतिभा के सृजन की नवीनता का एहसास हुआ है। भगवन् महावीर के 25वें निर्वाण महोत्सव से उनके कार्य को गति प्राप्त हुई। गोम्मटेश्वर सहस्राब्दी महोत्सव, कुंदकुंद द्विसहस्राब्दी समारोह, बावनगजा-मस्तकाभिषेक, इंदौर में गोम्मटगिरि का निर्माण जैसे अनेकों असामान्य कार्य हमारी आंखों के सामने एक के पीठे एक आ रहे हैं —यह सारा इतिहास श्रीविद्यानंद जी द्वारा ही निर्मित है और उनका यह कार्य केवल जैनसमाज का नहीं; बल्कि सारी भारतीय जनता का ही भूषण बना है।

पिछले दस वर्षों से वे प्राकृतभाषा और श्रमण संस्कृति के अनुसंधान की ओर आकर्षित हुए हैं। धर्म से सम्बन्धित होने से जिस विषय को हमने मंदिर में बन्द कर रखा था, उसे उन्होंने विद्यापीठों में अभ्यास का विषय बनाया। 'शौरसेनी प्राकृतभाषा का व्याकरण' उनके अनुसंधान का विशेष विषय बन गया। उसके लिये व स्वयं ही एक विद्यापीठ बन गये। 'कुंदकुंद भारती' आचार्यश्री की ज्ञानगरिमा का प्रतीक बन गया। जिस संस्था में वे इस देश के सर्वप्रथम भाषिक आत्मा को ढूँढ रहे हैं। अब यह सिद्ध हो रहा है कि –

(1) इस देश की मूलभाषा प्राकृत ही है, संस्कृत नहीं; (2) प्राकृतभाषा आम

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जनता की थी और उसका विकास संस्कृत भाषा के विकास के समानान्तर ही हुआ था; (3) इस भाषा का साहित्य संस्कृत साहित्य की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय था; (4) शौरसेनी प्राकृतभाषा सारे उत्तर भारत की मूलभाषा है और उसका प्रभाव दक्षिण भारत पर भी पड़ा था।

इन्हीं कारणें से हमें हर साल 'प्राकृतभाषा दिवस' मनाना है। जिस भारतीय बोली-भाषा से ऋग्वेद काल की संस्कृत बनी, उसी का साहित्यिक स्वरूप शौरसेनी की प्राकृतभाषा है। यही शौरसेनी भाषा अन्य सब भारतीय भाषाओं की जननी मानी जाती है। शौरसेनी आज की सब भारतीय भाषाओं की मूलप्रकृति है। विशेषरूप से जैनधर्म का सब प्राचीन साहित्य इसी शौरसेनी भाषा में है। आचार्य कुंदकुंद के सारे ग्रंथ इसी शौरसेनी भाषा में हैं।

हमारे आज के साधु-सन्तों को चाहिये कि पुरातन यतिधर्म को जानने के लिये वे इस प्राकृतभाषा का उसके व्याकरण के साथ अभ्यास करें। बिना इस भाषा के अध्ययन के वे जैनधर्म के मूल-तत्वों को समझ नहीं सकेंगे। जिसप्रकार वैदिक विद्वान् आज भी साहित्य का निर्माण संस्कृतभाषा में करते हैं; उसीतरह हमारे श्रमणों को भी शौरसेनी प्राकृतभाषा में साहित्य का निर्माण भी करना चाहिये।

कुंदकुंद भारती की ओर से त्रैमासिक शोध पत्रिका-'प्राकृतविद्या' के नाम से प्रकाशित होती है। यह पत्रिका प्राकृतभाषा के प्रचार का कार्य उत्तम रीति से कर रही है। यह ऐसा समय है कि जब प्राकृतभाषाप्रेमी समस्त विद्वानों को दिल्ली में सम्पन्न होनेवाले इस समारोह में सोत्साह भाग लेना चाहिये।

प्राकृत भाषा का हमारा आन्दोलन जात-पाँत से सम्बन्धित सांप्रदायिक आन्दोलन नहीं है; बल्कि वह एक बड़ा सांस्कृतिक आन्दोलन है। प्राकृतभाषा हमारे अस्तित्व और अस्मिता की प्रतीक है। अहिंसा, अनेकांत और अपरिग्रह के सन्देश की प्राकृतभाषा में निबद्ध हैं। जैनधर्म की स्वतन्त्रता प्राकृतभाषा के गौरव पर निर्भर है। क्या प्राकृत भाषा की यह पुकार हमें सुनायी देगी?

C/o मधुसूदर वासुदेव सर्राफ
C-1/56/6, श्रीरंग सोसाइटी
आग्रा रोड, ठाणे (पश्चिम) 400601
(महाराष्ट्र)

✲✲

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

'लेश्यासिद्धान्त : स्वरूप एवं महत्त्व'

–श्रीमती अमिता जैन

भारतीय चिन्तन-परम्परा में वर्णों के सांकेतिक एवं निमित्त-नैमित्तिक आदि रूप से अनेकविध आध्यात्मिक संदर्भ ग्रहण किए गए हैं। लोक में भी 'बुरी नज़र वाले तेरा मुँह काला', 'शर्म के मारे लाल हुई', एवं 'धवलकीर्ति' -जैने दैनंदिन में प्रयुक्त होने वाले वाक्यों में आगत काला, लाल एवं धवल (श्वेत) वर्ण सामान्य रंगों के सूचक न होकर विशिष्ट आत्मिक भावों के प्रतीक हैं। बाह्य वर्ण एवं उनसे आत्मिक परिणामों के सम्बन्ध को दर्शानेवाला एक विशिष्ट सिद्धान्त जैनदर्शन में भी अत्यन्त व्यापक एवं सूक्ष्म विश्लेषणों के साथ उपलब्ध होता है; जिसे 'लेश्यासिद्धान्त' के नाम से जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों में परिगणित किया गया है।

आत्मा और कर्म का सम्बन्ध करानेवाली 'लेश्या' का जैनशास्त्रों में अतिविशद वर्णन प्राप्त होता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति, निरुक्ति, परिभाषा, भेद-प्रभेद एवं नानाविध शंका-समाधानों के साथ अनेक प्रसंगों में आचार्यों के द्वारा इसकी विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गयी है। अर्थ, व्युत्पत्ति, निरुक्ति, परिभाषा आदि की दृष्टि से इसका क्रमिक विवरण निम्नानुसार है:-

'लेश्या' शब्द के विभिन्न अर्थ–

विभिन्न कोशों में कोशाकारों द्वारा 'लेश्या' शब्द के प्रकाश[1], ज्योति[2], किरण, तेज, मण्डल, मण्डलबिम्ब, दीप्ति[3], ज्वाला, देह-सौन्दर्य, आत्मा का परिणाम-विशेष अथवा कृष्णादिक द्रव्यों के सान्निध्य से होनेवाला आत्माका शुभाशुभ परिणाम या उसकी उत्पत्ति का निमित्तक द्रव्य[4] एवं वर्ण[5] आदि विभिन्न अर्थ दिए गए हैं। कोशकारों एवं शास्त्रकारों ने इसे अन्त:करणवृत्ति[6] एवं अध्यवसाय[7] की संज्ञा भी दी है।

'लेश्या' शब्द की व्युत्पत्ति–

उपलब्ध प्राचीन जैनागम अधिकांशत: प्राकृतभाषा में निबद्ध हैं। इन प्राचीन जैनागमों में लश्या के लिए 'लेसा'[8] या 'लेस्सा'[9] शब्द व्यवहृत हुए हैं। इनके संस्कृत रूप 'लेश्या' या 'श्लेष्या' दोनों ही हो सकते हैं। यद्यपि संस्कृत के आगमग्रंथों में आचार्यों के द्वारा 'लेश्या' शब्द ही प्रयुक्त किया गया है, पर प्रयोग की प्राचीनता की दृष्टि से 'लेश्या' एवं 'श्लेष्या' - इन दोनों शब्दों की ही व्युत्पत्ति पर विचार किया जा रहा है। इनकी व्युत्पत्ति निम्नप्रकार से है-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

लेश्या:–(1) 'लिश्' धातु से 'यत्' प्रत्यय एवं स्त्रीलिंग का 'टाप्' प्रत्यय लगकार 'लेश्या' शब्द निष्पन्न होता है।

(2) 'लिश्' धातु से कर्मणि 'ण्यत्' प्रत्यय लगाकर तथा स्त्रीलिंग के 'टाप्' प्रत्यय के योग से भी 'लेश्या' शब्द सिद्ध होता है।

'लिश्' धातु 'दिवादिगण'[10] में 'अल्पीभाव' के अर्थ में तथा 'तुदादिगण'[11] में 'गति' अर्थ में है।

श्लेष्या:–(1) 'श्लिष्' धातु से 'यत्' प्रत्यय एवं स्त्रीलिंग का 'टाप्' प्रत्यय लगकार 'श्लेष्या' शब्द सिद्ध होता है।

(2) 'श्लिष्' धातु से कर्मणि 'ण्यत्' प्रत्यय एवं स्त्रीलिंग के 'टाप्' प्रत्यय के संयोग से भी 'श्लेष्या' शब्द निष्पन्न होता है।

'श्लिष' धातु –'भ्वादिगण'[12] में 'दाह' अर्थ में, 'दिवादिगण'[13] में 'आलिंगन' और 'प्रत्यासत्ति' अर्थ में तथा 'चुरादिगण'[14] में 'श्लेष' अर्थात् मिलने और 'चिपकाने' के अर्थ में प्राप्त होती है।

निरुक्तियाँ:–'लेश्या' एवं 'श्लेष्या' शब्द की व्युत्पत्ति के बाद अब विभिन्न निरुक्तियों के आलोक में इनके अर्थों पर क्रमश: विचार किया जा रहा है–

(1) 'लिश्यते इति लेश्या'–अर्थात् जो आत्मा की अनन्त शक्ति को अल्प करती है या घटाती है, वह 'लेश्या' है।

(2) **'लिश्यते अल्पीभूयते गम्यते वा अनया इति लेश्या'**–इस निरुक्ति के अनुसार जिस माध्यम की सहायता से अल्पता लाई जाए या गति की जाय, वह माध्यम ही 'लेश्या' है।

(3) **'लिश्यते अनेन इति लेश्या'**–इस निरुक्ति के अनुसार कर्म की गति या आस्रव होने का कारण (वह भाव जो कर्म की गति में निमित्तक है) 'लेश्या' है, क्योंकि इसके कारण ही (कर्म की) गति कराई जाती है।

(4) **'श्लेषयति वा इति लेश्या'**–यह निरुक्ति लेश्या के 'दाहकत्व' अर्थ को बतलाती है। इसके अनुसार आत्मा के स्वाभाविक गुणों को दहन करनेवाला जो भाव या परिणाम है, वही 'लेश्या' है।

(5) **'श्लेषयति इति' या 'श्लिष्यते अनने इति'**–इस निरुक्ति के अनुसार जिसके द्वारा आलिंगन, प्रत्यासत्ति या संश्लेषण का कार्य किया जाय, वह लेश्या है।

(6) **'लिंपइ अप्पीकीरइ एदीए णिय-अपुण्ण-पुण्णं च जीवो त्ति होई लेस्सा'**[15] –नेमिचंद्राचार्य की यह निरुक्ति भी उपर्युक्त अर्थ को प्रकारान्तर से पुष्ट करती है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जीव इस लेश्यारूपी साधन के द्वारा पाप और पुण्यरूप कर्मों से अपनी आत्मा को लिप्त करनेवाला बतलाया गया है।

(7) (कर्मभिरात्मानं) 'लिंपति इति लेश्या'[16] इस निरुक्ति के माध्यम से धवलाकार ने लेश्या को कर्म-संश्लेष का कार्य करनेवाली ही बतलाया है।

उपर्युक्त प्रकार से व्युत्पत्ति एवं निर्वचनों के द्वारा व्याकरणिक एवं नैरूक्त रीति से 'लेश्या' का शाब्दिक एवं अर्थपरक परिचय देने के बाद अब जैन दार्शनिक रीति से लेश्या का पारिभाषिक विश्लेषण अपेक्षित है, जो निम्नानुसार है-

विभिन्न परिभाषाओं के आलोक में लेश्या के स्वरूप का विश्लेषण निम्नप्रकार से किया जा सकता है-

(1) 'जीवस्स भावलेस्सा परिणामो अप्पणो जो सो'[17] धवला में उद्धृत इस गाथा के अनुसार लेश्या (यहाँ भावलेश्या अभिप्रेत है, क्योंकि विवेचन भागों के प्रसंग में ही चल रहा है।) आत्मा का परिणाम है। –इस परिभाषा के अनुसार लेश्या को आत्मा का परिणाम बतलाया गया है। यद्यपि आत्मा निश्चयनय से स्फटिकवत् सर्वथा शुद्ध है, तथापि कृष्णादि वर्णोंवाले पदार्थ के संयोग से शुद्ध स्फटिक में भी जिसप्रकार कालिमा (मालिन्य) आदि प्रतिभासित हाती है, उसीप्रकार शुद्ध आत्मा में भी भौतिक पदार्थों के रागादि के कारण परिणमन (विकारभाव) प्रतिभासित होता है। आत्मा का उक्त विकृत परिणमन[18] ही लेश्या है। यही भाव आचार्य नरेन्द्रसेन के निम्न शब्दों में भी अभिव्यंजित है-

'जपापुष्पादिसाचिव्यात् यः स्वभावः प्रजायते।
स्फटिकादौ तथा जीवे लेश्या स्यात् कर्मयोगतः।।[19]

(2) 'आत्मप्रवृत्ति संश्लेषकारी लेश्या'[20] अथवा (कर्मभिरात्मानं) लिम्पति इतिलेश्या' –धवलाकार की इस परिभाषा के अनुसार आत्मा और प्रवृत्ति अर्थात् कर्म का संबंध करानेवाली भावलेश्या ही है। –इस परिभाषा के अनुसार लेश्या को आत्मा और कर्म का संश्लेष करानेवाली बतलाया गया है।[21] यहाँ पर लेश्या को वह साधन या माध्यम बतलाया गया है, जिसकी सहायता से कर्म और आत्मा आपस में संश्लिष्ट हो जाते हैं।

(3) 'का लेस्सा णाम' मिच्छत्त-संजम-कसाय-जोगा त्ति भणिदं होदि।[22] 'धवला' की इस परिभाषा के अनुसार मिथ्यात्व, असयंम, कषाय और योग–यही लेश्या है। यही आत्मा के स्वाभाविक विशुद्ध गुणों में अल्पता लाते हैं। ये भाव मोहनीय कर्म के उदय, क्षय, उपशम एवं क्षयोपशम से होते हैं; अतः नेमिचन्द्राचार्य

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ने 'मोहुदयखओवसमोवसम खयजजीवफंदणं भावो'[23] अर्थात् मोहनीय कर्म के उदयादि से होनेवाले जीव के स्पन्दन को भावलेश्या कहा है। -मिथ्यात्व, असंयम, कषाय आदि को धवलाकार ने लेश्या कहा है।[24] जीव के ये परिणाम आत्मा के स्वाभाविक गुणों में विकार उत्पन्न कर उनमें अल्पता लाते हैं। लेश्यारूप परिणाम की प्रतिक्रिया आत्मा पर होती है- इस परिभाषा के द्वारा यही बतलाया गया है।

(4) 'जोगपउत्ती लेस्सा कसाय-उदयाणुरंजिया होई'[25] –इस परिभाषा के अनुसार जीव के मन, वचन और काय की जो प्रवृत्ति कषाय अर्थात् क्रोध-मान-माया-लोभादिरूप विकारी भावों से रंजित है; उसी को 'लेश्या' शब्द से अभिहित किया गया है।-यह परिभाषा लेश्या से होनेवाले दाहकत्व के आधार पर की गयी है। लेश्या को कषाय से अनुरंजित मन, वचन और काय की प्रवृत्तिरूप[26] बतलाया गया है। कषाय जीवों के परिणाम को कषते हैं, उन्हें विकृत करते हैं। यह विकृति आत्मा में आकुलता उत्पन्न करती है। यह आकुलता एक प्रकार का दाह ही है, जिसमें आत्मा निरन्तर जलती है। आत्मा का यह दाह लेश्या के कारण ही है।

(5) 'संसारवृद्धिहेतुर्लेश्या'[27] इस परिभाषा के अनुसार लेश्या को संसारवृद्धि का हेतु बतलाया गया है। क्योंकि लेश्या कर्मबन्ध कराती है और कर्मबन्ध में भी संसार में रोकने में हेतुक आयु एवं गति कर्म का मूलकारण लेश्या को बतलाया है। 'पंचास्तिकाय' में जयसेनाचार्य ने 'लेश्या सा च शुभाशुभगतिनामकर्मण आयुकर्मणश्च बीजकारणं भवति'[28] –यह स्पष्ट ही कहा है। सिद्धान्त यही बतलाता है कि जीव और कर्म का संयोग ही संसार का कारण है। इस कर्मसंयोग के कारण जीव संसार में पुनः पुनः परिभ्रमण करता है। कर्म के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश-ये चार प्रकार के बंध बताए गए हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि कषाय से अनुरंजित मन, वचन और काय की प्रवृत्ति लेश्या है। इसमें लेश्या में कषाय और योग-ये दो मुख्यरूप से घटकतत्त्व के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। और कषाय और योग-इन दोनों से ही कर्म के चारों प्रकार के उपर्युक्त बंध होते हैं। 'योग' प्रकृति और प्रदेशबंध का कारण है और 'कषाय' स्थिति एवं अनुभागबंध का कारण है। इसप्रकार इन दोनों के कार्य भी लेश्या के कार्य के रूप में कहे गए हैं–"तत्तो दोण्हं कज्जं बंधचउक्कं समुदिदट्ठं।।"[29] इस चार प्रकार के बंध के साथ-साथ लेश्या संसार की वृद्धिरूप कार्य में हेतु होने की भूमिका भी निर्वहण करती है।[30] लेश्या आयुबंध का मूलकारण बतलायी गयी है।[31] आयु के कारण ही जीव संसार में रुकता है और इसप्रकार उसका संसार परिभ्रमण होता रहता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

लेश्या दो प्रकार[32] की कही गयी है- (1) द्रव्यलेश्या और भावलेश्या। द्रव्यलेश्या कर्म और नोकर्म से मिश्रित[33] शरीर के छह वर्णोंवाली है।[34] भावलेश्या शरीर, वचन और मन की चंचलता तथा कषायों की रंजकता से युक्त मिश्रित अवस्थारूप है।[35]

यह 'आत्मा का परिणाम'[36] या भाव के रूप में कही गयी है, अत: उन भावों के मलिनतम से लेकर उज्ज्वलतम रूप-वैविध्य को आचार्यों ने 6 वर्णों के नामों के द्वारा अभिव्यक्ति दी है।[37] भाव अशुभ से शुभ की ओर क्रमश: मलिनतम, मलिनतर, मलिन एवं उज्जवल, उज्जवलतर तथा उज्जवलतम रूप में सामान्यत: पाए जाते हैं। इन्हीं भावों को क्रमश: कृष्ण, नील, कापोत तथा पीत, पद्म एवं शुक्ल वर्णों के अनुरूप कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, पीतलेश्या, पद्मलेश्या एवं शुक्ललेश्या-इन छह लेश्याओं के नामों से अभिहित किया है। इन भावों से युक्त व्यक्तियों के लक्षण भी प्रत्येक लेश्यानुसार आचार्यों ने विविचित किए हैं, जो क्रमश: निम्नानुसार हैं-

(1) कृष्णलेश्या युक्त व्यक्ति मलिन, दूषित, अहितकारी और आत्मा को पतन के उन्मुख करनेवाले विचारों से युक्त होता है। इसका मन सदा अशांत एवं क्रोध से युक्त रहता है। धर्म से विमुख एवं क्रूर परिणामी होता है। इसका लक्षण आचार्यों ने निम्न श्लोक के माध्यम से प्रस्तुत किया है-

'आर्त्तरौद्र: सदा क्रोधी मत्सरो धर्मवर्जित:।
निर्दयो वैरसंयुक्तो कृष्णलेश्यायुतो नर:।।

(2) नीललेश्या से युक्त व्यक्ति आलसी, मन्दबुद्धि अर्थात् सन्मार्ग की ओर ले जानेवाली बातें इसकी समझ में नहीं आतीं, स्त्रियों में अत्यधिक आसक्त एवं प्रवंचक होता है। सदा कातरता के भावों से युक्त एवं तीव्र मानवाला होता है। उपर्युक्त सभी भावों की अभिव्यंजना नीललेश्या के लक्षण के रूप में आचार्यों ने इसप्रकार की है-

'आलस्यो मंदबुदिश्च स्त्रीलुब्ध प्रवंचक:।
कातरश्च सदा मानी नीललेश्यायुतो नर:।।

(3) कापोतलेश्या से युक्त व्यक्ति सदा शोकाकुल प्रकृतिवाला तथा सदा रुष्ट रहनेवाला होता है। छोटी-छोटी बातों पर रोना और शोक में निमग्न रहना इसका स्वभाव बन जाता है। अपने अल्प गुणों को भी अच्छा बताते हुए अपनी प्रशंसा करता है तथा दूसरों के महान् गुणों को भी निन्दा करता है। इसके विषय में आचार्यों के निम्न उद्गार युक्ति-युक्त ही हैं-

'शोकाकुल: सदारुष्ट: परनिन्दात्मशंसक:।
संग्रामे प्रार्थते मृत्युं कापोतोऽयमुदाहृत:।।'

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

(4) पीतलेश्या में परिणाम विशुद्धि की ओर जाने लगते हैं, अतः इस लेश्या से युक्त व्यक्ति प्रबुद्ध होता है। वह भले और बुरे का विचारकर कार्यों में प्रवृत्त होता है। इस व्यक्ति का हृदय करुणा से युक्त होता है और लाभ तथा हानि–दोनों में ही सदा संतुष्ट रहता है। यही भाव निम्नश्लोक के माध्यम से प्रकट होता है–

'प्रबुद्धः करुणायुक्तः कार्याकार्यविचारकः।
लाभालाभे सदा प्रीतः पीतलेश्यायुतो नरः।।'

(5) पद्मलेश्या से युक्त व्यक्ति के विचारों में अत्यधिक सात्त्विकता आ जाती है। इस लेश्या से युक्त व्यक्ति निर्मल एवं कोमल हृदयवाला तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव से युक्त मनवाला होता है। यह सदा आत्मिक आनंद का अनुभव करता है और फलस्वरूप इसके मुख पर प्रसन्नता की आभा स्पष्ट लक्षित होती है। इसके गुणों की प्रशंसा आचार्यों ने निम्नश्लोक के माध्यम से की है–

'दयाशीलः सदात्यागी देवतार्चनतत्परः।
शुचिभूतः सदानन्दः पद्मलेश्यायुतो नरः।।'

(6) शुक्ललेश्या भावों की उज्जवलता का प्रतीक है। जैसाकि इसके नाम से ही स्पष्ट है, इस लेश्यावाले व्यक्ति के भाव अत्यन्त उज्जवल/निर्मल होते हैं। विकारी भावों का लेश भी यहाँ नहीं पाया जाता। इसी अवस्था में राग-द्वेषादि भावों से मुक्त हुआ व्यक्ति अध्यात्मिक की ऊँचाई के शिखर पर पहुँच जाता है। यही भाव निम्नश्लोक में अभिव्यक्त हैं–

'रागद्वेष-विनिर्मुक्तो शोकनिद्राविवर्जितः।
परात्मभाव-सम्पन्नः शुक्ललेश्यायुतो नरः।।'

इसप्रकार इन छह लेश्याओं से भावों की क्रमिक विकासयात्रा स्पष्ट परिलक्षित होती है। इन लेश्याओं से युक्त विभिन्न जीवों के परिणामों को एक रूपक के माध्यम से जैनागम में आचार्यों ने अत्यन्त सुन्दररूपेण प्ररूपित किया है–

पहिया जे छप्पुरिसा, परिभट्टारण्णमज्झदेसम्हि।
फलभरियरुक्खमेगं पेक्खित्ता ते विचिंतंति।। 507।।
णिम्मूल-खंध-साहुवसाहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं।
खाउं फलाइं इदि जं, मणेण वयणं हवे कम्मं।। 508।।[38]

इसप्रकार जैनदर्शन में लेश्या वह आत्मविकृति है, जो कि प्रशस्तएवं अप्रशस्त-दोनों रूपों में जीव को कर्मबन्ध कराती है। इसके कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल-ये छहों भेद परिणामों की विकृति से सुधार की ओर क्रमिक तारतम्य के सूचक हैं तथा बाह्यदृष्ट्या इनकी कृष्णादिक संज्ञाएँ अन्वर्थक हैं, एवं क्वचित् मात्र

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

परिणामों में ही सार्थक होती हैं। प्रायः सम्पूर्ण भारतीय दर्शनों में इसतरह का चिन्तन न्यूनाधिकरूप में पाया जाता है। जैनदृष्टि से उसका तुलनात्मक अध्ययन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शोध-विषय है, जो कि स्वतंत्र विवेचन की अपेक्षा रखता है।

सन्दर्भग्रंथ सूची

1. संस्कृत-हिन्दी कोश (आप्टे), पृ० 883।
2. संस्कृत-शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ० 967।
3. पाइय सद्दमहण्णव, पृ० 905।
4. प्राकृत-हिन्दीकोश (के०आर०चन्द्रा), पृ० 965।
5. भगवती शतक। पृ० 707।
6. अभिधान राजेन्द्र कोश, भाग 1, पृ० 674।
7. वही। पृ० 674 एवं आयारो/श्रु.1/अ०6/उ 5, सू० 5, पृ० 22।
8. पंचसंग्रह (प्राकृत)। 1/142 पृ० 30।
9. वही। 1/57/ पृ० 12 तथा धव० पु० 8/3/237/पृ० 356 एवं गो०जी०/गा० 490।
10. दिवादिगण की धातु सं० 1179।
11. तुदादिगण की धातु सं० 1421।
12. भ्वादिगण की धातु सं० 702।
13. दिवादिगण की धातु सं० 1186।
14. चुरादिगण की धातु सं० 1574।
15. गोम्मटसार जीवकाण्ड/गा० 489।
16. धवला पु० 1/1, 1,4/पृ० 150।
17. कृष्णादि द्रव्य साचिव्यात् परिणामो य आत्मनः।
    स्फटिकस्येव तत्रायं लेश्या शब्दः प्रजुज्यते।।
18. सिद्धान्तसारसंग्रह। 5/172/पृ० 142।
19. 'आत्म-प्रवृत्ति-संश्लेषणकरी लेश्या' धवला पु० 1/1, 1,4/पृ० 150।
20. धवला पु० 8/3, 273/पृ० 356 "जीवकम्माणं संसिलेसयणरी मिच्छत्तासंजम-कसाय जोगा ति भणिदं होदि।"
21. 'जोगपउत्ती लेस्सा कसाय-उदयाणुरंजिया होई।' गोम्मटसार जीवकांड, गा० 490।
22. गोम्मटसार जीवकांड, गा० 490।
23. 'संसारवृद्धिर्हेतुर्लेश्या' धव० पु० 1/1, 1, 136, पृ० 390।
24. "कषायोदयानुरञ्जिता योगवृत्तिर्लेश्या, सा च शुभाशुभगतिनामकर्मण आयुः कर्मणश्च बीजकारणं भवति।" *-पंचास्तिकाय गा० 119 की ता०वृ० टीका।*
25. धवला पु० 2/पृ० 788 पर उद्धृत गाथा।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

26. धवला पु० 1/1, 1/4पृ० 150।
27. धवला पु० 1/1, 1, 4/150।
28. धवला पु० 8/3, 273/पृ० 356।
29. गो० जीवकाण्ड/गाथा 536।
30. गो० जीवकाण्ड/गाथा 450।
31. धवला पु० 1/1, 1, 136/पृ० 388।
32. 'दव्व-भावेहि छ लेस्साओ' -धवला पु० 2/पृ० 425।
33. 'कम्मनोकम्मभिस्सियं दव्वं, -धवला पु० 2/पृ० 788।
34. 'दव्वेण छ लेस्सा त्ति भणिदे सरीरस्स छव्वण्णा चेत्तव्वा। -धवला पु० 2/पृ० 425।
35. 'भावेण छ लेस्सा त्ति भणिदे जोग कसाया छभेदद्विदा घेत्तव्वा। -धवला पु० 2/पृ० 425।
36. 'जीवस्स भावलेस्सा परिणामो अप्पणो जो सो' -धवला 2/पृ० 788 पर उद्धृत।
37. "तस्यात्मपरिणामस्याऽशुद्धि प्रकर्षाप्रकर्षापिक्षया कृष्णादि शब्दोपचारः क्रियते" तत्त्वार्थवार्तिक, 2/6/8।
38. गोम्मटसार जीवकाण्ड। गा० 507-508।

**

With Best Compliments From:-

Freelance Corporation

12 Printing Press Area,
(Behind Punjab Kesari) Wazirpur,
Delhi-110 035 (INDIA)
Tel.: 7104050, 7192321, 7103020
Fax.: (91-11) 7102020

Manufactures of

Exclusive range of Tablemats, Luxury Trays, Shower curtains, Bedsheets, Tablelinen, Kitchen co-ordinates, Memoboards and Office Planners.

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

(गतांक से आगे)

विद्यानन्द-शतकम्

—उपाध्याय कामकुमारनन्दि

धर्मागारं महाप्राज्ञं सम्यग्गुणविभूषणम्।
श्रीविद्यानन्दमाचार्यं वन्दे सौन्दर्यशालिनम्।। 11।।

अर्थः—धर्म के निवासस्थान, महान् विद्वान्, सम्यक् गुणों से विभूषित, आत्मिक एवं बाह्य-उभयविध सौन्दर्य से सुशोभित आचार्यश्री विद्यानन्द की मैं वंदना करता हूँ।

मोक्षार्थिनं तपोरश्मिं प्रबोधोज्ज्वलशालिनम्।
श्रीविद्यानन्दमाचार्यं वन्दे नैजात्म्यभाविनम्।। 12।।

अर्थः—जो स्वयं मोक्षार्थी हैं, तप की आभायुक्त हैं, उत्कृष्ट ज्ञान से उज्ज्वल चरित्रवाले हैं, जो निजात्मतत्त्व की भावना करते रहते हैं, —ऐसे आचार्यश्री विद्यानन्द की मैं वंदना करता हूँ।

सुबोधस्वामिनं वन्दे शुद्धश्रमणमार्गिणम्।
श्रीविद्यानन्दमाचार्यं सम्यक्-शिक्षाप्रदायकम्।। 13।।

अर्थः—जो सम्यग्ज्ञान के स्वामी हैं, निर्दोष श्रमणचर्या को पालन करनेवाले हैं, आत्महितकारी शिक्षा के प्रदाता हैं —ऐसा आचार्यश्री विद्यानन्द की मैं वंदना करता हूँ।

सुशिष्यबोधने युक्तं करूणालयशालिनम्।
श्रीविद्यानन्दमाचार्यं वन्दे दीक्षाधिकारिणम्।। 14।।

अर्थः—जो सत्पात्र शिष्यों को ज्ञानदान देने में निरत रहते हैं, जो करुणा के निवासस्थान हैं, जो भव्यजीवों को मुनिदीक्षा देने के अधिकारी हैं —ऐसे आचार्यश्री विद्यानन्द की मैं वंदना करता हूँ।

सद्भिः प्राप्त-यशोमूर्तिं सर्वैः कीर्तितपात्रकम्।
श्री विद्यानन्दमाचार्यं वन्दे क्लेशकर्मजितम्।। 15।।

अर्थः—जो सज्जनों से प्राप्त हुए यश की मूर्ति हैं, जो सभी के द्वारा स्तुति/गुणगान के योग्य पात्र हैं, दु:खदायी कर्मों को जीतने में जो निरत हैं, —ऐसे आचार्यश्री विद्यानन्द की मैं वन्दना करता हूँ।

राष्ट्रसन्तं प्रजासन्तं सूरिसन्तं सुशालिनम्।
श्री विद्यानन्दमाचार्यं वन्दे ज्ञानविभूषणम्।। 16।।

अर्थः—जो राष्ट्रसन्त हैं, प्रजासन्त हैं, सूरि (आचार्य) सन्त हैं, अत्यन्त शालीन हैं, ज्ञानविभूषण हैं —ऐसे आचार्यश्री विद्यानन्द की मैं वन्दना करता हूँ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विश्वधर्मप्रणेतारमहिंसाव्रतपालकम् ।
श्री विद्यानन्दमाचार्यं वन्दे गम्भीरमूर्तिकम् ।। 17 ।।

अर्थ:—जो विश्वधर्म के प्रणेता हैं, अहिंसामहाव्रत के पालनकर्त्ता हैं, ऐसे परमगम्भीर मुखमुद्रावाले आचार्यश्री विद्यानन्द की मैं वन्दना करता हूँ।

लोकवन्द्यं निजानन्दं धर्मरत्नं दिगम्बरम् ।
श्री विद्यानन्दमाचार्यं वन्दे ज्ञानदिवाकरम् ।। 18 ।।

अर्थ:—जो लोकपूज्य हैं, निजानन्द में मग्न हैं, धर्मरत्न हैं, दिगम्बर हैं —ऐसे ज्ञानरूपी सूर्य आचार्यश्री विद्यानन्द की मैं वन्दना करता हूँ।

सौम्यसाधु यतिश्रेष्ठं सुरासुर-सुवन्द्यकम् ।
श्रीविद्यानन्दमाचार्यं वन्दे चारुव्रतान्वितम् ।। 19 ।।

अर्थ:—जो सौम्यसाधु हैं, यतिश्रेष्ठ हैं, सुरासुरों भलीभाँति पूज्य हैं, श्रेष्ठव्रतों से सहित हैं —ऐसे आचार्यश्री विद्यानन्द की मैं वन्दना करता हूँ।

चारुमूर्तिं सदा स्तुत्यं ज्ञानपीयूषवर्षणम् ।
श्री विद्यानन्दमाचार्यं वन्दे कीर्त्या सुशोभितम् ।। 20 ।।

अर्थ:—मनोहारी आकृतिवाले, सदा स्तुत्य, ज्ञानरूपी अमृत की वर्षा करनेवाले, कीर्ति से सुशोभित आचार्यश्री विद्यानन्द की मैं वन्दना करता हूँ।

**

श्रोता-परीक्षा

"अप्रतिबुद्धानां व्याख्यानं निरर्थकं भवति पुंसाम् ।
नेत्रविहीने भर्त्तरि विलासलावण्यमिव स्त्रीणाम् ।।

नितान्त अज्ञानी जीवों के लिए ज्ञानियों के व्याख्यान भी निरर्थक (व्यर्थ) होते हैं। वही कहा गया है-

अर्थ:-"अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) श्रोता को विज्ञजनों का व्याख्यान/उपदेश उसी तरह निरर्थक होता है, जैसे कि अन्धे पति के लिए स्त्रियों के सौन्दर्यपूर्ण हाव-भाव व्यर्थ होते हैं।

न तो अन्धा व्यक्ति सुन्दरियों के सौन्दर्य एवं उनके विलास को देख सकता है, और न ही मूढ़ व्यक्ति ज्ञानियों के उपदेश के अर्थ को समझ सकता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मूलाराधना में प्रतिबिंबित अहिंसातत्त्व

-डॉ० बी०के० खडबडी

मानवजाति के सुदीर्घ इतिहास में अहिंसा ने बड़े ही महत्त्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह किया है और विश्व के समस्त उपलब्ध धर्मों में उसे अपनी-अपनी पद्धति से महत्त्व दिया गया है। भारत में ईस्वी सन् पूर्व 600 में जैनधर्म ने धर्म के नाम पर यज्ञ-यागादि विधियों में होनेवाली हिंसा के कारण वैदिक-धर्म से विरोधात्मक दृष्टिकोण अपनाया। बौद्धधर्म में अहिंसा के तत्त्व और आचारविषयक स्वतः सीमित व्यवस्था रही। किंतु जैनधर्म में अहिंसा को अपने अनुयायिकों के आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक विचार-आचारों में सर्वश्रेष्ठ या केंद्रस्थान दिया गया। डॉ० बूलचंद के शब्दों में "जैनधर्म की नीति-संहिता में अहिंसातत्व को बिठाने का अनुपम और आदर्श ढंग खास जैनों का ही रहा है।"[1] इसका परिणाम यह हुआ कि आज दुनियाँ के हजारों मानवसमाजों में सिर्फ जैनधर्मियों में ही अहिंसा पालन बड़ी आस्था के साथ हो रहा है। यह सत्य इन दिनों में पाश्चात्य जनों का ही लक्ष्य आकर्षित कर रहा है- इस सत्य को ठीक तरह पहिचानकर ब्रिटैन के सुप्रसिद्ध और गुणग्राही कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के मानव समाजशास्त्र-विभाग ने 1985 में "जैनसभा" (Jaina Community) पर एक अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया, जिसमें दुनियाँ के अनेक ख्यातनाम मानवसमाज शास्त्रज्ञों ने भाग लिया और उन्होंने उसके विविध पक्षों पर अपने-अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किए।[2]

यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि जैनियों के अहिंसातत्त्व और आचार वैदिकधर्म के पूर्व के हैं। जैन-परंपरा के अनुसार अहिंसातत्व का बोध सर्वप्रथम आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव ने किया। ईसा सन् पूर्व 1500 में 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ,[3] अपने विवाह-मंडप में जाते समय विवाह-भोजन के लिए बंधन में रखे हुए अनेक दीन पशु-पक्षियों को देखकर, अपने लिए होने वाली भीषण हिंसा के भय से वहाँ से वापिस लौटकर श्रमण दीक्षा में दीक्षित हुए और अहिंसा-पालन के एक अद्वितीय आदर्श पुरुष बन गये। आगे ई०पू० 800 के आगे 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने जैनधर्म के तत्त्वों को एक निश्चितरूप देकर उसमें अहिंसा को प्रथम स्थान दिया। तत्पश्चात 24वें तीर्थंकर महावीर ने अहिंसा को प्रथम स्थान में ही रखकर, पंचमहाव्रतप्रधान परिष्कृत धर्म का प्रतिपादन किया।

उस समय भगवान् महावीर ने अहिंसा के बारे में जो-जो बोध किया, वह सब गणधरों से सूत्ररूप में संग्रहीत होकर जैनाचार्यों की मौखिक परंपरा से आगे चलकर, आगम-ग्रन्थों के रूप में संचयित हुआ। अब मैं दिगम्बरों के अधिकृत आगम (Procanon)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

के शिवार्य से शौरसेन प्राकृत में रचित 'मूलाराधना' नामक वृहत-ग्रंथ के अनुशिष्टि अधिकार में निरूपित अहिंसातत्त्व को कई विमर्शात्मक विचारों के साथ यहाँ प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

मूलाराधना उस काल की रचना है, जब दिगम्बर और श्वेतांबर परंपरा में विशेष अंतर नहीं था। शिवार्य कहते हैं, "इस आराधना ग्रन्थ में सर्वश्रुतज्ञान का सार इकट्ठा किया गया है—"आराहणाणिबद्धं सव्वं पि सुदणाणं।"[4] इसलिए इस आराधना-ग्रन्थ में प्राप्त अहिंसातत्त्व की जानकारी अत्यंत विश्वसनीय और महत्वपूर्ण है।

मूलाराधना दिगंबर-परम्परा के अधिकृत आगम के अत्यंत प्राचीन ग्रन्थों में से एक है। इस ग्रन्थ का असली नाम आराधना था। किंतु कालांतर में रचित इस नाम की अन्य कृतियों से इसे पृथक् और प्राचीन बताने के लिए इसे 'मूलाराधना' नाम दिया गया। इस ग्रन्थ का अपर नाम 'भगवती-आराधना' है। भगवती शब्द केवल आदरार्थी विशेषण है, और लोकप्रियता का द्योतक है। मूलाराधना में कुल 2170 गाहाएँ हैं और वे 40 अधिकारों में विभक्त हैं। इस ग्रन्थ पर अनेक संस्कृत, प्राकृत टीकाएँ लिखी गयी हैं, जिनमें अपराजित सूरि की 'श्रीविजयोदया टीका' (सन् 800 ई०) श्रेष्ठ है।

इस ग्रन्थ के रचयिता शिवार्य या शिवकोट्याचार्य है। कई विद्वानों के अभिप्राय में उमास्वामी के गुरु शिवश्री और शिवार्य एक ही हैं। इनका समय लगभग 100 हो सकता है। ये जैनधर्म-ज्ञान-पारंगत आचार्य थे, करतलभोजी और स्थित भोजी थे। पं० प्रेमी के मतानुसार ये यापनीय थे।[5]

भारतीय धर्मों में आराधना का सामान्य अर्थ प्रार्थना, अर्चना या विशेष पूजा है। किंतु जैनधर्म में इसका विशेष अर्थ है; आराधना यानि मोक्ष प्राप्ति के लिए सम्यगदर्शन, ज्ञान, चरित्र और तप की कठोर साधना। शिवार्य ने इस ग्रन्थ में इन चारों का विस्तृत विवेचन दिया है, विशेषकर जैन मुनियों का अंतिम लक्ष्य सल्लेखना अथवा समाधिकरण (भक्त प्रत्याख्यान मरण) का सर्वतोमुखी विवेचन दिया गया है। इस विषय का इतना विस्तृत विवेचन अन्यत्र नहीं मिलता। शिवार्य ने यहाँ जैनधर्म की पूर्ण समीक्षा की है। यहाँ अहिंसातत्त्व निरूपण का सन्दर्भ इसप्रकार है-

जब कोई जैन मुनि क्षपक (अन्न-जल छोड़कर देह और कषायों का क्षय करनेवाला) बनकर संस्तर (घास की शय्या) पर बैठना है, तब संघप्रमुख और निर्यापकाचार्य (मार्गदर्शक आचार्य) उसे मानो धैर्य और स्थैर्यदायक बोध (33वाँ अधिकार, गाहा 720-1489) अत्यन्त सहानुभूति के साथ प्रदान करते हैं। दशविध जैनधर्म के महत्वपूर्ण तत्त्व, उपसर्ग-परीषहजय (तप में आनेवाली कठिनाइयों पर जय पाना) के कई दृष्टान्त,

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आराधना-फल का स्वरूपादि अनेक विषय मृदु-मधुर शब्दों में क्षय को समझाते हैं। इस समय वे क्षपक मुनि को पंचमहाव्रत के विषय में बहुत-कुछ सुनाते हैं। स्वाभाविकत: इस बोधांनर्गत अहिंसातत्त्व का वे विवेचन करते हैं (दि गाहा 776-822) इन 47 गाहाओं में अनेक गाहा[6] निम्नदर्शित अंशों का भी निरूपण किया गया है–

(i) हिंसा की व्याख्या

(ii) आत्माओं की समानता

(iii) हिंसा के पाँच प्रकार (पंचप्रयोग)

(iv) भाव हिंसा

(v) हिंसाचरण के परिणाम

(vi) हिंसा के 108 प्रकार, और

(vii) अहिंसा के यशस्वी आचरण में त्रिगुप्ति और पाँच समितियों का पालन इन अंशों की जानकारी इतर आगम, व्याख्या और श्रावकाचार के ग्रन्थों में प्राप्त होने के कारण, मैं इसका पुनरुच्चार यहाँ न करके सिर्फ अहिंसा से संबंधित महत्वपूर्ण अंशों की चर्चा प्रस्तुत करना उचित समझता हूँ।

हिंसा की वयाख्या देने के बाद[7] शिवार्य जैनधर्म में प्राप्त अहिंसा की मूल परिकल्पना (concept) बताते हैं–

जह ते न पियं दुखं तहेव तेसिं पि जाण जीवाणं।
एवं णच्चा अप्पोकमिओ जावेसु होहि सदा।।[8]

अर्थात् जिसप्रकार तुझे दु:ख नहीं भाता, वैसे ही तू इतर जीव को भी जान। यह जानकर उन जीवों को भी तू अपने समान मान (और उन्हें दु:खी करने से दूर रह)।

यह गाथा हमें आचारांग-सूत्र में प्राप्त एक प्रसिद्ध परिच्छेद की स्मृति दिलाती है। यथा–"सव्वे पाणा पिसाउया सुहासाया, दुक्ख-पडिकूला, अप्पिय-वहा, पिय-जीविणो, जिविउ कामा सव्वेसिं जीवियं पिसं।"[9]

अर्थात् सर्व प्राणियों को अपने प्राण प्रिय हैं, वे सुख की इच्छा करते हैं और दु:ख को प्रतिकूल मानते हैं। वे मरण नहीं चाहते हैं, जीवित रहना चाहते हैं। सबको जीवन (जीवित रहना) प्रिय है।

तत्पश्चात् हमें–'दशवैकालिक सूत्र' में भी वैसा ही एक सन्दर्भ प्राप्त होता है।

यथा– सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिजीउं।
तम्हा जाणवहं घोरं निग्गंथा वज्जयंति णं।।[10]

अर्थात् सर्व प्राणी जीवित रहना चाहते हैं, मरण कोई नहीं चाहता। प्राणिवध

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

घोर निन्द्यकृत्य समझकर निर्ग्रंथ मुनि उससे दूर रहते हैं।

ऊपर दिए हुए परिच्छेद और गाथाओं के सूक्ष्म परिशीलन से प्रतीत होता है कि वह सब भगवान् महावीर द्वारा प्रतिबोधित अहिंसा-तत्त्व की परिकल्पना की सीधे-सादे सरल शब्दों में प्रतिध्वनि ही है। क्योंकि भाषा और विषय-विवेचन की दृष्टि से इन तीनों में पर्याप्त साम्य है।

शिवार्य ऊपर दी हुई गाहा में अहिंसा की रूपरेखा देने के बाद पुन: के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-

इस विश्व में जिसप्रकार अणु से छोटी कोई वस्तु नहीं है और आकाश से बड़ी कोई वस्तुत नहीं। ठीक इसी तरह विश्व में अहिंसा से बढ़कर अन्य कोई व्रत या नियम नहीं है।[11]

तदनंतर आचार्य अहिंसा को सर्व व्रत-नियमांतर्गत रूप में विवेचन करते हैं-

जैसे आकाश तीनों लोकों को अपने में समाविष्ट कर लेता है, और जैसे पृथ्वी समस्त सागरों को अपने में समाविष्ट कर लेती है; उसी तरह अहिंसा (अर्थात् अहिंसा का आचरण) समस्त व्रत, नियम, शील और गुणों को अपने में समाविष्ट कर लेती है।[12]

अगली दो गाथाओं में आचार्य अहिंसातत्त्व को मुनिधर्म (और श्रावक धर्म भी) की समस्त योजनाओं के केन्द्र स्थानों में रहने का चित्र अपनी अलंकारिक भाषा में प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं- अहिंसातत्त्व (यत्याचार और श्रावकाचार) रूपी नेमि को आधार देनेवाले आरों को पकड़नेवाले, बैलगाड़ी के चक्र के गड्डे (मध्य बिंदु-hub) के समान हैं और शील खेत की फसल की रक्षा करनेवाले (hedge) के समान अहिंसा ही व्रत की रक्षा करते हैं।[13]

आगे आचार्य स्पष्ट करते हैं कि अहिंसा व्रत के आचरण में, इतर चार व्रतों के आचरण का भी उसमें समवेश होता है।[14]

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने भी अपने 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि इतर हर एक व्रत और कुछ नहीं है, बल्कि अहिंसाव्रत के अंतरस्वरूप को अलग-अलग शब्दों में बताने का प्रयास ही है।[15] इसलिए हम कह सकते हैं कि अहिंसा-व्रत, मोक्ष-साधनार्थ आचरणीय इतर व्रतों का भी अन्य एक संदर्भ में प्रमुख कुंजी (Master Key) है। शिवार्य अपने सत्त्वशाली किंतु किंचित् व्यंग्य-शैली में वैदिकधर्म के एक विरोधाभासयुक्त तत्त्वप्रणाली को खोलकर, जिन-प्रणीत अहिंसा का विश्वमान्य और प्रामाणिक स्वरूप बताते हैं:

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

–यदि गाय और ब्राह्मण की हत्या का निषेध करनेवाला (वैदिक) धर्म श्रेष्ठ होता है, तो सर्व जीवित प्राणियों की हत्या का निषेध करनेवाला दूसरा (जैन) धर्म श्रेष्ठ क्यों नहीं हो सकता?"[16]

हम इस प्रसंग में यह नहीं भूल सकते हैं कि शिवार्य ने अपनी इस विचारधारा के अंतिम चरण में, जैनधर्म में प्राप्त विशिष्ट रचनात्मक सामाजिक गुण और कोई गंभीर हिंसाकृत्य को भी क्षमादान मिलने की संधि या सौलभ्यरूप तत्त्वों को एक चांडाल का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है। एक चांडाल अपने गंभीर हिंसा-कृत्यों के फलस्वरूप शिंशुमार नाम के भयंकर नरक में गया। तत्पश्चात् वही पश्चात्ताप पाकर अहिंसा का आचरण करने के कारण देवों से पूजित हो गया।

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि, 'मूलाराधना' में अहिंसातत्त्व से संबंधित यह भाग, अहिंसाव्रत के तत्त्व और आचार के विविध पक्षों का सर्वतोमुखी दर्शन करा देता है। यहाँ की एक गाहा के[18] अंतर्गत अहिंसा की मूल परिकल्पना भगवान् महावीर द्वारा प्रतिबोधित अंहिसा की परिकल्पनांतर्गत शब्दावली की प्रतिध्वनि-सी गुणनी है। आगम ज्ञान-पारंगत, बोधन-कुशल आचार्य शिवार्य ने यहाँ शुष्क तार्किक विचारखण्ड की पद्धति न अपनाकर अलंकार दृष्टान्तयुक्त सरल शैली की श्रुतिमधुर शौरसेनी गाहाओं में जिनप्रणीत अहिंसातत्त्व का सर्वदर्शी विश्वमान्य चित्र प्रस्तुत किया है और इसका केंद्र स्थानिक महत्त्व बताया है। यह सब हमारे मन:पटल पर सुस्पष्ट मुद्रित हो जाना है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि 'मूलाराधना' के इस भाग की गई गाथाएँ जिनवाणी जैसे आधुनिक प्रौढ़ संकलन-ग्रन्थों में और जैनेंद्र सिद्धान्त कोश जैसे जैन-विश्वकोश ग्रन्थों में "अहिंसा" को शिरोनाम सूची में आदरपूर्वक उद्धृत की गई है।

सहायक ग्रन्थ और टिप्पणियाँ

1980 में राजगृह (वीरायतन) में अंहिसा पर आयोजित राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत किए हुए संशोधित लेख का परिष्कृत रूप।

1. Lord Mahaveera, Sammati Series 2, Varanasi 1948, P. 73.
2. यदि कोई विद्वान् इस अंतराष्ट्रीय संगोष्ठी के कार्यकलाप (Proceedings) की एक प्रति मंगवाकर हिन्दी में अनुवाद करें, तो वह संशोधक और इतर जिज्ञासुओं के लिए बहुत उपयुक्त होगा।
3. (i) 22वें तीर्थंकर अरिष्टनेमी ऐतिहासिक पुरुष थे, यह सत्य इन दिनों में इस अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

(ii) यदि महाभारत के केन्द्र व्यक्ति कृष्ण ऐतिहासिक महापुरूष थे, तब उनके चचेरे भाई ऐतिहासिक पुरुष क्यों नहीं हो सक्ते?

4. (i) गाहा 2163

(ii) यहाँ मैने मूलाराधना, शातिसागर ग्रंथमाला 13, सोलापुर आवृत्ति (1935) का उपयोग किया है। यहाँ के सब उल्लेख उसी आवृत्ति से संबंधित हैं।

5. जैन साहित्य और इतिहासं, (हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर मुंबई) 1956, पृ० 67।

6. गाहा 776, 783, 800, 801, 807, 808, 811, 816, 817-818.

7. गाहा 776.

8. गाहा 777.

9. आचारों II-3, 63-64, सं० मुनिश्री नथमल जी, जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता 1947 पृ० 29।

10. दसवेयालियसुत्त, सं० व्ही-वैद्य पुणे, सन् 1937, अ० 6, गाहा 11.

11. गाहा 784.

12. गाहा 786.

13. गाहा 787-788.

14. गाहा 791.

15. देखिए Jaina Yoga, R. William, London, Oriental Series 14, London 1963, P.64.

16. गाहा 792.

17. गाहा 822.

18. गाहा 777.

19. सं० डॉ० हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1975.

20. भाग I, सं० जिनेंद्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1970.

**

'अक्षरतत्त्व एवं वर्णतत्त्व का यथार्थज्ञान व्याकरण है।'

(अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन, पृ० 24, कपिलदेव द्विवेदी)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

स्थायी स्तम्भ

समयसार के पाठ

—डॉ० सुदीप जैन

[प्रस्तुत स्तम्भ में पाठों की उन भूलों की ओर ध्यानाकर्षित किया जा रहा है, जो कि आधुनिक सम्पादकों/प्रकाशकों की असावधानी अथवा मूलपाठ न देखने की प्रवृत्ति अथवा मात्र प्रकाशनरुचि से 'मक्षिकास्थाने मक्षिकानिक्षेप:' की वृत्ति से छपने के कारण 'समयसार' के कतिपय प्रकाशित संस्करणों में आ गयी हैं। और जिनके कारण परमज्ञानी आचार्य कुन्दकुन्द के 'समयसार' की स्वरूपहानि हो रही है। उनका परिष्कार एवं आचार्य कुन्दकुन्द के शुद्ध मूलपाठों का प्रस्तुतीकरण ही इस स्तम्भ का एकमात्र लक्ष्य है —*सम्पादक* ।]

'समयसार' की गाथा 356 से लेकर 364 पर्यन्त गाथाओं में 'सेडिया' पद का प्रयोग दृष्टान्तस्वरूप हुआ है। किन्तु इसके स्थान पर 'सेटिया' एवं 'सेटिका' जैसे पदों का भी प्रयोग मिलता है। सत्य एवं तथ्यपूर्ण पाठ कौन-सा है? - यह जानने के पूर्व इस पद के बारे में कुछ परिचय अपेक्षित है।

'सेडिया' शब्द का मूल अर्थ 'सफेद मिट्टी' या 'खड़िया' है। चूँकि प्राचीनकाल में प्राकृतिकरूप से उपलब्ध लेखनसामग्री के रूप में खड़िया का प्रयोग होता रहा है, जो कि आज तक भी ग्रामीण जीवन में देखा जाता है। इसका वर्ण कुछ हल्का पीलापन लिए सफेद (पाण्डु) होता है, अत: खड़िया द्वारा लिखित सामग्री को 'पाण्डुलिपि' संज्ञा पहिले कभी दी गयी होगी; जो कि आज अंग्रेजी के 'मैन्यूस्क्रिप्ट' (manuscriepts) के अर्थ में रूढ़ हो गयी है। समग्र प्राकृत-साहित्य में इसके लिए 'सेडिया' पद ही मिलता है, 'सेटिका' या 'सेटिया' नहीं। देखें'

(i) सेडिया (स्त्री.)	- सफेद मिट्टी, खडिकया	- पाइयसद्दमहण्णव, पृ० 390
(ii) सेडिया	- सफ़ेद मिट्टी	- आचारांगसूत्र, 2/1/6/3
(iii) सेडिया	- खडिकया	- मूलाचार 6/474
(iv) सेडिया	- श्वेतिका (स्त्री) खटिकायाम्	- अभिधानराजेन्द्रकोश, भाग 7, पृ० 114
(v) सेडिया	- शुक्लमृत्तिका	- दशवैकालिक, 5/1
(vi) सेडिया	- खड़िया मिट्टी	- देशी शब्दकोश, पृ० 425
(vii) सेडिया	- सफेद मिट्टी, खड़िया मिट्टी	- अर्द्धमागधी कोश, भाग 4, पृ० 854

उक्त विवरण से सुतरां स्पष्ट है कि 'सेडिया' एक 'देशी' शब्द है, जो कि प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य में प्रयुक्त हुआ है। इसके लिए संस्कृत छायाकारों ने जो

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

'श्वेतिका' रूप दिया है, उससे 'सेडिया' के देशी' शब्द होने के बारे में भ्रम उत्पन्न होता है; किंतु उसका निवारण इस तथ्य से किया जा सकता है कि सम्पूर्ण प्राचीन संस्कृत साहित्य एवं कोशग्रन्थों में कहीं भी 'खड़िया' या 'सफेद मिट्टी' के अर्थ में –श्वेतिका' पद का प्रयोग नहीं मिलता है। यहाँ तक कहीं भी किसी भी अर्थ में 'श्वेतिका' शब्द का ही उल्लेख नहीं है। खड़िया या सफेद मिट्टी की सफेदी से साम्य बैठाकर तुक मिलाते हुए 'श्वेतिका' शब्द का सृजन हुआ ज्ञात होता है। किंतु इससे प्राकृत का 'सेडिया' शब्द संस्कृत के 'श्वेतिका' शब्द का 'तद्भव' भासित होता है, जबकि 'सेडिया' विशुद्ध 'देशी' शब्द है और 'देशी' शब्द किसी अन्य शब्द से 'तत्सम' या 'तद्भव' नहीं हुआ करते हैं। 'प्राकृतप्रकाश के कर्त्ता ने प्राकृतशब्दों की त्रिविधता स्पष्टत: स्वीकार की है–"तद्भवं तत्समं देश्यमिति त्रय: प्रकारा: प्राकृतेषु।" *(प्राकृतप्रकाश, पृ० 93)*

रही बात जयसेनाचार्य द्वारा इस शब्द का प्रयोग करने की, तो वहाँ भी उन्होंने शब्दसाम्य के आधार पर 'श्वेतिका' प्रयोग किया है, किंतु उन्हें भी यह पता था कि इस अर्थ में संस्कृत में 'श्वेतिका' जैसा कोई शब्द नहीं है, अत: उन्होंने वहीं अनेक बार 'श्वेतमृत्तिका' शब्द का भी साथ-साथ प्रयोग किया है।

'सेडिया' शब्द की मूलप्रकृति का निर्धारण करने के बाद अब इसके प्राप्त पाठान्तरों पर चर्चा अपेक्षित है। सर्वप्रथम टीकाकारों ने इसके क्या रूप माने हैं? उनका परिचय निम्नानुसार प्रस्तुत है–

1. आचार्य अमृतचन्द्रकृत 'आत्मख्याति' टीका में इसके लिए 'सेटिका' एवं 'श्वेतयित्री' शब्द मिलते हैं। वे स्पष्टीकरण करते हुए लिखते हैं–"सेटिकात्र तावच्छ्वेतगुणनिर्भरस्वभावं द्रव्यम्", अर्थात श्वेतगुण से भरित स्वभाववाला द्रव्य (खड़िया) यहाँ 'सेटिका' शब्द से अभिप्रेत है।

2. आचार्य जयसेन ने 'तात्पर्यवृत्ति' टीका में इसके लिए 'श्वेतमृत्तिका', 'श्वेतिका' एवं 'खटिका' –इन तीन शब्दों का व्यवहार किया है। किन्तु अधिक ज़ोर उन्होंने 'श्वेतमृत्तिका' शब्द पर ही दिया है, जो कि 'सेडिया' का वस्तुगत अर्थ है।

3. आचार्य बालचन्द्र 'अध्यात्मी' ने अपनी कन्नड़ वृत्ति (अप्रकाशित) में इसके लिए 'धवलमृत्तिके' शब्द का प्रयोग किया है, जो कि 'श्वेतमृत्तिका' का ही कन्नड़ रूपान्तर है।

इनसे संस्कृत एवं कन्नड़ में कुल छह शब्द 'सेडिया' के लिए प्रयुक्त प्राप्त हुए— (1) सेटिका, (2) श्वेतयित्री (3) श्वेतमृत्तिका, (4) श्वेतिका (5) खटिका और (6) धवलमृत्तिके। किन्तु ये सभी टीकाकारों के भाषान्तरित शब्दप्रयोग है, प्राकृत पाठान्तर नहीं। प्राकृत के पाठान्तर विभिन्न प्रतियों में निम्नानुसार मिलते हैं–

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विभिन्न प्रतियों में उपलब्ध पाठभेदों का विवरण–

क्र.सं.	समयसार की प्रति	उपलब्ध पाठ	पृष्ठ सं०
1.	अहिंसा मंदिर प्रकाशन	सेडिया	439-441
2.	कन्नड़ ताड़पत्रीय प्रति (बालचंद्र मुनि की टीका)	सेडिया (हस्तलिखित)	125
3.	कुन्दकुन्द कहान ट्रस्ट, जयपुर	सेडिया	546-547
4.	आ० ज्ञानसागर जी प्रति	सेटिया	318-319
5.	कन्नड़ ताड़पत्रीय प्रति (दिवनागरी लिप्यन्तरण)	सेढिया (ह०लि०)	385-386
6.	पं० गजाधरलाल जी	सेटिया	183-184
7.	मुसद्दीलाल जैन चेरि० ट्रस्ट, दरियागंज	सेटिया	508-509
8.	कलकत्ता प्रति	सेटिया	508-509
9.	अंग्रेजी संस्करण (भा० ज्ञानपीठ)	सेटिया	211-212
10.	सोनगढ़ प्रकाशन	सेडिया	487-488
11.	परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगरा	सेडिया	439-441
12.	मराठी संस्करण, कारंजा	सेडिया	440-461
13.	कन्नड़ प्रकाशन, बैंगलोर	सेडिया	527-529
14.	गणेशवर्णी ग्रन्थमाला	सेडिया	306-307
15.	रायबहादुर जे०एल० जैनी	सेटिया	196-199
16.	गुजराती संस्करण, भावनगर	सेडिया	502-504
17,	क्षुल्लक निजानंद	सेडिया	187
18.	सप्तदशांगी टीका	सेडिया	581-582

इन सबसे निष्कर्षत: तीन पाठान्तर उपलब्ध होते हैं– (1) सेटिका, (2) सेटिया और (3) सेढिया। 'सेटिका' पाठ इन में मूलत: नहीं दिया होने पर भी 'आत्मख्याति' टीका से पाठान्तरस्वरूप लिया गया है। क्योंकि आचार्य अमृतचन्द्र से 'सेटिका' शब्द का प्रयोग तो किया है, किन्तु सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में निरुक्ति, व्युत्पत्ति, व्याकरण, साहित्य आदि किसी भी विधा में इस शब्द का प्रयोग ही नहीं मिलता है; न तो इस अर्थ में और न ही किसी अन्य अर्थ में। सम्प्रति आचार्य अमृतचन्द्रकृत 'आत्मख्याति' टीकावाली कोई हस्तलिखित मूलप्रति उपलब्ध न होने से इसके बारे में पूर्ण विश्वास के साथ यह नहीं कहा जा सकता है कि 'अमृतचन्द्राचार्य सदृश प्रकाण्ड संस्कृतज्ञ ने मूल में कौन-सा शब्द प्रयोग किया था?'

शेष 'सेटिया' एवं 'सेढिया' – ये दोनों पाठान्तर इसी 'सेटिका' पाठ का

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आधार मानकर इसके प्राकृतीकरणवाले रूप प्रतीत होते हैं। जो भी हो, मूल के ये दोनों ही पाठ नितान्त अशुद्ध हैं; क्योंकि 'सेडिया' शब्द 'देशी' होने के कारण शौरसेनी प्राकृत, अर्द्धमागधी प्राकृत, अपभ्रंश आदि समान्तर भाषाओं में अपने अपरिवर्तितरूप 'सेडिया' में ही उपलब्ध होता है; जबकि सामान्य 'तद्भव' या 'तत्सम' रूपवाले शौरसेनी शब्दों के अर्धमागधी एवं अपभ्रंश में रूप बदले देखे जाते हैं।

यहाँ एक तर्क दिया जा सकता है कि 'सेढिया' पाठ तो हस्तलिखित कन्नड़ ताड़पत्रीय प्रतिलिपि (श्रवणबेलगोल वाली) में है; तब क्या हस्तलिखित प्रति के पाठ को भी अशुद्ध माना जाये? किन्तु यह कोई ऐसा उत्तेजित होने जैसा बिन्दु नहीं है। क्योंकि लिपिकारों से ऐसी भूलें प्रायः होती रहती हैं, जिनके अनेकों कारण पाण्डुलिपि-विशेषज्ञों ने गिनाये हैं; उनमें एक कारण क्षेत्रीय प्रभाव भी होता है। चूंकि उक्त कन्नड़ ताड़पत्रीय प्रति कर्नाटक प्रान्त में रचित है तथा कन्नड़ भाषा में आज भी सफेदी/कलई/सफेद मिट्टी को 'सेढि' शब्द प्रचलित है। प्रतीत होता है कि कन्नड़ के संस्कारवश प्रतिलिपिकार ने 'सेडिया' की जगह 'सेढिया' पाठ रख दिया हो। किन्तु हमें इस बारे में संशोधन का अधिकार स्वयं प्रतिलिपिकार ने दिया है, वे लिखते हैं—"करकृतमपराधं क्षन्तुमर्हन्ति सन्तः।" —*(प्रशस्ति, पृ० 36)*

अर्थः—यदि प्रतिलिपि करते समय मेरे हाथ से कोई भूल-चूक हो गयी हो, तो सज्जन उसे क्षमा करें।

यही नहीं, स्वयं आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने भी 'नियमसार' (गा० 185) में लिखा है कि "यदि इसमें कहीं पूर्वापर विरोध हो, तो आगम के ज्ञातापुरुष उसे दूरकर उसकी पूर्ति करें।" क्योंकि आचार्य कुन्दकुन्द जानते थे कि बाद में प्रतिलिपिकारों के द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ बन सकती हैं, वे सब मूलकर्त्ता के कार्य न मान ली जायें—इसलिए उन्हें यहाँ स्पष्ट करना पड़ा है कि सभी को मूलपाठ नहीं मान लें।

अतः गलत पाठ को सुधारने के बारे में अनावश्यकरूप से भयभीत होने की जरूरत नहीं है। हाँ ! इतना अवश्य ध्यान रखा जाये कि भली-भाँति विचार किये बिना, परम्परा का अध्ययन-अनुशीलन किये बिना, पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर कोरे पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए किये जानेवाले ऐसे प्रयत्न अवश्य ही निंददीय होंगे। अतः विद्वान् सम्पादक इन सब बातों का ध्यान रखते हुए पूर्ण सावधानी एवं आगमवचनों के प्रति अगाध श्रद्धाभक्ति एवं विवेकपूर्वक कोई प्रमाणसहित संशोधन करता है तथा उसे ग्रंथ के स्वरूप में, उसके अर्थ में, उसकी आम्नाय में कोई दोंष नहीं आता है; प्रत्युत श्रीवृद्धि एवं प्रामाणिकता ही आती है; तो ऐसे संशोधनों के लिए किसी से अनुमति लेने की अपेक्षा नहीं है, यह तो सम्पादक का कर्तव्य है और इसके लिए उसे

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

किन्हीं के प्रस्तावों एवं फतवों का भय नहीं रखना चाहिए।

सम्पादन की इस परम्परा की नींव प्राचीन विद्वानों ने रखी थी। बहुत वर्ष पूर्व निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से जब प्रथमबार 'जिनसहस्रनाम' प्रकाशित हो रहा था, तो उसमें एक जगह पाठ आया 'अरण्य-पुण्य-दीर्घण्य:'; किंतु इसमें 'अरण्य' पद की अर्थ से संगति नहीं बैठ रही थी। फलस्वरूप तत्कालीन सम्पादकों (डॉ० ए०एन० उपाध्याये; श्री कल्लप्पा निटवे शास्त्री आदि) एवं निर्णयसागर प्रेसवालों ने सही पाठ मिलने तक छह माह तक ग्रंथ का प्रकाशन बीच में ही रोके रखा। जब सही पाठ 'अगण्य-पुण्य-दीर्घण्य:' मिला, तभी ग्रंथ आगे प्रकाशित हुआ। —ऐसी थी हमारे पूर्वज विद्वानों की निष्ठा एवं शोधवृत्ति। आज के विद्वान् तो 'अरण्य' पाठ को भी पाठान्तर मानकर छपवा देते।

पाठ कैसे चुने जायें? —इस बारे में सुविख्यात विद्वान् डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार द्रष्टव्य हैं— **"शब्द के जिस रूपान्तर को ग्रहण किया जाये, वह न केवल व्याकरण-सम्मत ही होना चाहिए, अपितु भाषाशास्त्र द्वारा अनुमोदित भी होना चाहिए; तभी ठीक अर्थ प्राप्त हो सकेगा।"** *(सन्देशरासक की प्रस्ता०, पृ० 12)*

शब्द की मूल प्रकृति यहाँ जानना अपेक्षित होती हैकि वह तत्सम है, तद्भव है या देशी? उसके आधार पर शब्द के स्वरूप का निर्णय अर्थसंगति एवं परम्परा के अनुसार किया जाता है। यदि विद्वान सम्पादक 'सेडिया' शब्द की मूल प्रकृति (देशी शब्द) को पहिचान लेते, तो इतने भ्रामक पाठान्तर ही प्रचलित नहीं होते। अस्तु, यहाँ इस लेखन का उद्देश्य किसी की छीछालेदारी करना नहीं है, अपितु सम्पादन के लिए कितनी गरिमा, अध्ययन एवं सावधानी अपेक्षित है-यह सूचित करते हुए समयसार के शब्द ब्रह्मत्व को मूल परिशुद्धरूप में सुरक्षित करना है। साथ ही आचार्य कुन्दकुन्द जैसे बहुज्ञ आचार्य के बारे में वाचाल विद्वानों (?) को सचेत करना भी यहाँ लक्ष्य है जो स्वयं तो शौरसेनी प्राकृत का क-ख-ग- तक नहीं पढ़े, और भावावेश में कुन्दकुन्द की भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' जैसे हल्के एवं अज्ञानतापूर्ण संज्ञाओं से अभिहित करने में चूकते नहीं हैं। क्या ही अच्छा हो कि वे पहिले प्राकृतभाषा एवं शौरसेनी प्राकृत की ऐतिहासिक परम्परा एवं उसके व्याकरणिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गौरव को विधिवत् सीखें और फिर उसके बाद कुन्दकुन्द जैसे महान् समर्थ आचार्य की भाषा के बारे में बोलने या लिखने की दिशा में प्रवृत्त हों। अन्यथा पीढ़ियों तक यही सन्देश जायेगा कि कुन्दकुन्दादि आचार्यों को भाषा एवं शब्दावलि का ज्ञान नहीं था; वे कभी कुछ लिखते थे, तो कभी कुछ। क्या यह गुरु एवं शास्त्र का प्रकारान्तर से अवर्णवाद नहीं होगा? विद्वान् पाठक विचारें एवं जो

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सत्य लगे, उसका स्पष्ट समर्थन करें।

वस्तुतः (1) 'सम्पादन, (2) सम्पादक, (3) सम्पादन-विधि एवं (4) सम्पादन का फल -ऐसी चार स्तरीय प्रक्रिया का ज्ञान हुए बिना सही सम्पादन हो नहीं सकता। 'सम्पादन' एक कला है; 'सम्पादक' उस कला का कलाकार है; 'सम्पादन विधि' के अन्तर्गत विविध प्रतियों का संग्रह, विषय-भाषाशास्त्र-व्याकरण-निरुक्त आदि का ज्ञान एवं निष्पक्ष होकर सूक्ष्ममेधा से निर्णय करने की क्षमता अपेक्षित होती है। तथा ऐसे 'सम्पादन का फल' होता है 'परिशुद्ध पाठ की प्राप्ति'। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में सत्यान्वेषण ही सबसे प्रधान होना चाहिए; जिस सम्पादक के हृदय में सत्य की सर्वोपरि प्रतिष्ठा होगी, उसके द्वारा सही पाठ एवं सही तत्त्व का निर्णय होता ही है। कहा भी है- "जाके हिरदै साँच है, ताकि हिरदै आप।।"

अतः शब्द एवं तत्त्व - दोनों का सत्य निर्णयकर आचार्यों के हार्द को स्वयं समझें एवं जन-जन तक उसे पहुँचा सकें - इसके लिए सम्पादन का गुरुतर दायित्व होता है। उसे समझें, अनुभव करें एवं प्रयोग में लावें - यही भावना है।

**

पिछले स्तंभ के बारे में.........

'समयसार के पाठ' के पिछले स्तंभ में मैंने 'समयसार' की 27वीं गाथा के चार पाठभेदों को प्रस्तुत कर सही पाठ का निर्णय विद्वानों के ऊपर छोड़ दिया था। तथा उनसे अपना निर्णय प्रेषित करने का सादर अनुरोध किया था। किन्तु आश्चर्य है कि समयसार के पाठों की इतनी वकालत करनेवाले विद्वानों में किसी ने भी उनमें से 'ठीक पाठ क्या है?' —यह निर्णय करने एवं बताने का साहस नहीं किया। इस अन्तराल में जहाँ प्राकृतविद्या की प्रशंसा के ऊपर ढेरों अभिमत आये, वहीं इस तात्त्विकप्रश्न पर किसी भी विद्वान् का पत्र नहीं आया।

मात्र एक प्रबुद्ध पाठक डॉ० एन० सुरेश कुमार का मैसूर (कर्नाटक) से पत्र आया और उन्होंने अपने निर्णयानुसार 'ऍक्को' और 'इक्को' पाठ को शुद्ध माना है। वस्तुतः 'ऍक्को' पाठ ही शुद्ध है। चूंकि प्राकृत में एकार ह्रस्व भी होता है, अतः इसका उच्चारण लगभग 'इकार' जैसा ही है। अतः उच्चारणसाम्य के कारण 'इक्को' पाठ को ठीक माना जाता है, किंतु शुद्ध पाठ 'ऍक्को' ही है।

– सम्पादक

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जैनदर्शन में तीर्थक्षेत्र की व्याख्या एवं मूल्यांकन

-डॉ० दयाचन्द्र साहित्याचार्य

भारतीय संस्कृति, पुरातत्त्व और इतिहास में तीर्थक्षेत्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है– जो आज भी तीर्थंकर आदि महापुरुषों के आध्यात्मिक सन्देशें को मौन आकृति से घोषित कर रहे हैं। ये तीर्थक्षेत्र त्रेसठशलाका महापुरुषों के यथायोग्य पुण्य स्मारक हैं। इन पावन तीर्थों ने भारतीय संस्कृति, पुरातत्त्व, इतिहास, धर्म, दर्शन और समाज के विकास में स्वयं को समर्पित कर दिया है।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'तीर्थ' शब्द की व्युत्पत्ति इसप्रकार होती है– "तीर्यति संसारमहार्णव: येन निमित्तेन, तत् तीर्थमिति" अर्थात् पवित्र साधन से संसांररूप महासमुद्र को पार किया गया वह 'तीर्थ' है। तीर्थ शब्द अनेक अर्थों में भी प्रसिद्ध है— **तीर्थे प्रवचनेपात्रे, लब्धाम्नाये विदाम्बरे।**

पुण्यारण्ये जलोत्तारे, महासत्त्वे महामुनौ।। -*(धनंजयनाममाला: पृ० 85)*

अर्थ:—तीर्थ के अनेक अर्थ हैं, 1. शास्त्र, 2. अवतार, 3. जलाशय का घाट, 4. महापुरुष, 5. पुण्यक्षेत्र, 6. उपाध्याय, 7. दर्शन, 8. यज्ञ, 9. तपोभूमि। इनसे सिद्ध होता है कि तीर्थ शब्द-परमश्रेष्ठ है और उसकी भक्ति सर्वथा कल्याणकारिणी होती है।

जैनतीर्थों के विषय में लिखे गये अनेक ऐतिहासिक-ग्रन्थ, भूगोल, कला तथा पुरातत्त्व की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। अनेक तीर्थों ने स्वयं साहित्य के विकास, प्रचार एवं प्रसार में उल्लेखनीय योगदान किया है।

अन्य प्रकार से 'तीर्थ' शब्द की व्याख्या

"तरति इति तीर्थं, अथवा तीर्यन्ते अनेन जना: इति तीर्थम्" तृ–प्लवनतरणयो:, भ्वादिगणी धातु से 'पात्टतुदि'—इत्यादि उणादिगण सूत्र से 'थक्' प्रत्यय के योग से शब्द तीर्थ की निष्पत्ति होती है।

'निपानागमपोस्तीर्थमृषिजुष्टजलेगुरौ' -*(अमरकोष तृ०काण्ड:श्लोक-86)*

अर्थ:-जलाशय, शास्त्र, ऋषिसेवितजल और गुरु के अर्थ में 'तीर्थ' शब्द का प्रयोग होता है।

'तीर्थ' शब्द के विषय में संस्कृतकोश 'मेदिनी' का प्रमाण

तीर्थ शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायनारीरज:सु च।
अवतारर्षिजुष्टाम्बुपात्रोध्यायमंत्रिषु।।

अर्थात्:—आगम, यज्ञ, गुरु, क्षेत्र, उपाय, नारीरज, जलावतरण, ऋषि से

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वितजल, पात्र, उपाध्याय, मंत्री इन अर्थों में 'तीर्थ' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

अन्यंत्र- संसाराब्धेरपारस्य तरणे तीर्थमिष्यते।
चेष्टितं जिननाथानां, तस्योक्तिस्तीर्थसंकथा।।

-(जिनसेनाचार्यकृत: आदिपुराण अ० 4, श्लो० 8)

तात्पर्य—जो इस अपार संसार सागर से पार करे, उसे 'तीर्थ' कहते हैं। ऐसा तीर्थ जिनेन्द्रदेव का चरित्र ही हो सकता है। अत: उसके कथन करने को 'तीर्थाख्यान' कहते हैं।

आचार्य समन्तभद्र ने तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव के शासन (विश्वहितकारी उपदेश) को 'सर्वोदय तीर्थ' की संज्ञा कही है-

सर्वान्तवत्तद् गुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।।

अर्थ:—मुख्यता तथा गौणता से व्यवस्थित, सर्वधर्मों से सहित, परन्तु परस्पर निरपेक्ष धर्मों की सत्ता से रहित, मिथ्यादर्शन के उदय से होने वाले सर्व दु:खों का विनाशक, अन्त से रहित आप का ही यह प्रसिद्ध सर्वोदय तीर्थ है, जो विश्व का कल्याणकारी है। *-(समन्तभद्राचार्य: युक्त्यनुशासन: पृ० 159, श्लो० 62)*

समन्तभद्राचार्य ने 'स्वयंभूस्तोत्र' (109) में भगवान् मल्लिनाथ की स्तुति करते हुए 'तीर्थ' शब्द का प्रयोग इसप्रकार किया है-

यस्य समन्ताज्जिनशिशिरांशो:, शिष्यकसाधुग्रहविभवोऽभूत्।
तीर्थमपि स्वं जननसमुद्रत्रासित-सत्त्वोत्तरणपथोऽग्रम्।।

अर्थ:—जिन मल्लिनाथ भगवान्‌रूपी चन्द्रमा के चारों ओर शिष्य साधुरूप ताराओं का विभव विद्यमान था और जिनका उपदेशरूपी तीर्थ भी संसार समुद्र से भयभीत प्राणियों को पार उतारने का प्रधानमार्ग था, उन मल्लिनाथ जिनेन्द्र की शरण को मैं प्राप्त हुआ हूँ।

तीर्थं करोतीति तीर्थकर:=धर्मतीर्थप्रवर्तक: (आद्यप्रणेता)।

—(षट्खण्डागम भाग 8, पृ० 91)

हस्तिनापुर के महाराजा श्रेयांस को 'आदिपुराण' में 'दान-तीर्थप्रवर्तक' कहा गया है तथा मोक्षप्राप्ति का प्रधान कारण रत्नत्रय को (सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र को) 'रत्नत्रयतीर्थ' कहा गया है। *—(आदिपुराण अ० 2, श्लोक 39)*

'आवश्यक निर्युक्ति' में तीर्थशब्द की व्याख्याएँ

(1) मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविका —इस चतुर्विध संघ को 'तीर्थ' कहते हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

(2) ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-इन चार वर्णों को 'तीर्थ' कहते हैं।
(3) ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, उदासीनाश्रम (नैष्ठिकाश्रम), भिक्षुकाश्रम (सन्यासाश्रम)-इन चार आश्रमों को 'तीर्थ' कहते हैं।
(4) चार ज्ञानधारी प्रधान गणधर को 'तीर्थ' कहते हैं।
(5) विशेष गणधर (अर्हन्त-जिनेन्द्र) को 'तीर्थ' कहा जाता है।

तीर्थ और क्षेत्रमंगल

प्राचीन जैन आचार्यों ने 'तीर्थ' शब्द के स्थान पर 'क्षेत्रमंगल' शब्दका प्रयोग किया है। क्षेत्रमंगल के सम्बन्ध में इसप्रकार व्याख्या दृष्टिगोचर होती है:-

तत्र क्षेत्रमंगलं गुणपरिणतासन-परिनिष्क्रमण-केवल-ज्ञानोत्पत्ति-परिनिर्वाणक्षेत्रादि:। तस्योदाहरणं—ऊर्जयन्त-चम्पा-पावानगरादि:। अर्धाष्टारत्न्यादि-पंचविंशत्युत्तरपंचधनु: शत-प्रमाणशरीरस्थितकैवल्याद्यवष्टाब्धाकाशदेशा वा, लोकमात्रात्मप्रदेशलोकपूरणापूरित-विश्वलोकप्रदेशा वा। —*(षट्खण्डागम-जीवस्थान सत्प्ररूपणा-1 : भाग 1, पृष्ठ 30)*

अर्थ:—गुणपरिणत आसनक्षेत्र अर्थात् जहाँ पर योगासन, वीरासन आदि अनेक आसनों से तदनुकूल अनेकप्रकार के योगाभ्यास, जिनेन्द्रियता आदि गुण प्राप्त किये गये हों—ऐसा क्षेत्र, परिनिष्क्रमण क्षेत्र (दीक्षाक्षेत्र), केवलज्ञानोत्पत्ति क्षेत्र और निर्वाणक्षेत्र आदि को 'क्षेत्रमंगल' कहते हैं। इनके उदाहरण-ऊर्जयन्त (गिरनार), चम्पापुर, पावापुर आदि नगर 'क्षेत्रमंगल' हैं। अथवा-सार्ध तीन हाथ से लेकर पाँच सौ पच्चीस धनुषपर्यन्त शरीर में स्थित और केवलज्ञान आदि से व्याप्त आकाश प्रदेशों को 'क्षेत्रमंगल' कहते हैं। अथवा-लोकप्रमाण आत्मप्रदेशों से लोकपूरण समुद्घातदशा में व्याप्त किये गये समस्त लोक के प्रदेशों को 'क्षेत्रमंगल' (तीर्थ) कहते हैं।

क्षेत्रमंगल के अन्य प्रमाण

"क्षेत्रमंगलमूर्जयन्तदिकमर्हदादीनां निष्क्रमणकेवलज्ञानादिगुणोत्पत्तिस्थानम्"।

-*(नेमिचन्द्राचार्य: गो० जीवकाण्ड : संस्कृतटीका)*

अर्थ:—तीर्थंकर अर्हन्त आदि के निर्वाणस्थान, तपस्या-भूमि, केवलज्ञानोदय भूमि आदि को क्षेत्रमंगल (तीर्थ) कहते हैं। इसप्रकार 'तीर्थ' शब्द के आशय में ही 'क्षेत्रमंगल' शब्द का प्रयोग दृष्टिगत होता है। तीर्थक्षेत्र शब्द का अभिप्राय यही सिद्ध होता है, जो क्षेत्रमंगल शब्द का ही है। निष्क्रमण (दीक्षा), केवलज्ञान निर्वाण आदि के पवित्र क्षेत्र आत्मगुणों की प्राप्ति के साधन हैं, अतएव इनको तीर्थक्षेत्र या तीर्थ कहते हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इसी विषय पर अन्य प्रमाण

गुणपरिणदासणं परिणिक्कमणं केवलस्स णाणस्स।
उत्पत्ती इयपहुदी, बहुमेणं खेत्तमंगलणं।।
एदस्स उदाहरणं, पावाणगरुज्जयंत-चंपादी।
आउट्ठहत्थपहुदी, णणुवीसब्भहिपणसयघणूणि।।

—(यतिवृषभाचार्यः तिळोयपण्णत्तिः भा० 1 : पृ० 3 : गाथा 21-22)

सारांश—गुणप्राप्ति के कारण आसनक्षेत्र अर्थात् जहाँ पर योगासन, वीरासन आदि विविध आसनों से तदनुकूल ज्ञान ध्यानाभ्यास, चित्तनिर्मलता आदि अनेक गुण प्राप्त किये गये हों—ऐसा क्षेत्र, दीक्षा लेने का क्षेत्र, केवलज्ञानोत्पत्ति का क्षेत्र इत्यादि रूप से 'क्षेत्रमंगल' (तीर्थ) बहुत प्रकार का है। इस क्षेत्रमंगल के उदाहरण-पावागिरि, ऊर्जयन्त (गिरनार पर्वत), चम्मापुर आदि हैं।

जिसकाल में महातपस्वी महात्मा केवलज्ञान आदिरूप मंगलमय अवस्था को प्राप्त करता है; उस काल को, दीक्षाग्रहणकाल, ज्ञानोदयकाल, मोक्षप्राप्तिकाल को 'कालमंगल' (तीर्थ) कहा गया है कारण कि ये सब तीर्थ कर्ममल को गलाने के कारण हैं।

जैनतीर्थों के अन्य दृष्टि से भेद

जैन संस्कृति की दृष्टि से जैनतीर्थ तीन प्रकार के प्रत्यक्षगोचर हो रहे हैं- (1) निर्वाणक्षेत्र, (2) सिद्धक्षेत्र, (3) अतिशयक्षेत्र।

निर्वाणक्षेत्र की परिभाषा

जिस स्थान से भी ऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थंकरों ने परमध्यान के माध्यम से निर्वाण (मोक्ष) पद को प्राप्त किया है, अतएव जहाँ पर देवों एवं मानवों द्वारा निर्वाण-कल्याणक-महोत्सव किया गया हो; वे 'निर्वाणक्षेत्र' कहते जाते हैं; जैसे कैलाशपर्वत (ऋषभदेव का निर्वाणक्षेत्र), गिरनार (नेमिनाथ का निर्वाणक्षेत्र), चम्पापुर (वासुपूज्य की निर्वाणस्थली), पावापुर (महावीर की निर्वाणभूमि), सम्मेदशिखर (शेष तीर्थंकरों का निर्वाणस्थल)।

सिद्धक्षेत्र की परिभाषा

जिस स्थान से चौबीस तीर्थंकरों से भिन्न महापुरुषों ने, मुनीश्वरों, आचार्यो एवं उपाध्यायों ने योगसाधना के माध्यम से सिद्धपद (मुक्तिपद) को प्राप्त किया है, वे 'सिद्धक्षेत्र' कहे जाते हैं; यथा चूलगिरि (बड़वानी), तुंगीगिरि, सिद्ध-वरकूट,

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

द्रोणगिरि, रेशंदीगिरि, कुन्थलगिरि आदि। यद्यपि निर्वाणक्षेत्रों से भी मुनीश्वरों आदि महापुरुषों ने सिद्धपद को प्राप्त किया है, तथापि उन क्षेत्रों में तीर्थंकरों के निर्वाणक्षेत्र तथा निर्वाणकल्याणक की ही प्रधानता सिद्ध होती है।

अतिशयक्षेत्र की सोदाहरण परिभाषा

जिन स्थानों में तीर्थंकरों के गर्भ, जन्मदीक्षा एवं ज्ञानकल्याणक महोत्सव हुए हों, महापुरुषों ने रत्नत्रय की साधना की हो, मुक्तिमार्ग के शास्त्रों का निर्माण किया हो, अथवा आत्मसाधना के कारण अन्य कोई अतिशय या चमत्कार हुआ हो, देवों द्वारा कोई धार्मिक अतिशय अथवा सुरक्षा हुई हो; वे पवित्र स्थान 'अतिशय क्षेत्र' कहे जाते हैं। जहाँ प्राचीन मन्दिर या मूर्तियाँ, जमीन से, जलाशय से, व पर्वतों से उपलब्ध हुई हों, उन्हें भी अतिशयक्षेत्र माना है। यथा-हस्तिनापुर, अयोध्या, श्रवणबेळगोळ इत्यादि।

श्री महावीर जी, देवगढ़, पद्मपरीक्षेत्र, तिजारा, ईश्वरवारा, बीना (बरहा) आदि अनेकों अतिशयक्षेत्र प्रसिद्ध हैं।

दिगम्बर जैन साहित्य में कुछ अन्य प्रकार से भी जैनतीर्थों के भेद पाये जाते हैं यथा (1) निर्वाणक्षेत्र, (2) कल्याणक्षेत्र, (3) अतिशयक्षेत्र। इन तीर्थों का अन्तर्भाव उक्त तीन तीर्थों में ही हो जाता है। निर्वाण तीर्थंकरों का निर्वाण होता है, उस स्थान पर सौधर्म इन्द्र चिह्न-विशेष बना देता है; उसी स्थान पर भक्त जब उन तीर्थंकर के चरण-चिह्न स्थापित कर देते हैं। आचार्य समन्तभद्र ने 'स्वयंभूस्तोत्र' में भगवान् नेमिनाथ की स्तुति करते हुए यह दर्शाया है कि 'ऊर्जयन्त पर्वत पर इन्द्र ने भगवान् नेमिनाथ के चरणचिह्न उत्कीर्ण किये थे।'

तीर्थक्षेत्रों का मूल्यांकन

जैनदर्शन में अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, निर्ग्रन्थसाधु-इन पंचपरमेष्ठी देवों की उपासना के वर्णन बहुत उपलब्ध होते हैं। इन पंचपरमेष्ठी परमदेवों के आधार से ही तीर्थों का उदय हुआ है। इन पंचपरमदेवों का और तीर्थक्षेत्रों का परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। अर्थात्- इन परमदेवों ने तीर्थों का निर्माण किया है और तीर्थक्षेत्रों ने इन देवों का निर्माण किया है। धर्मशास्त्रों में कथित है-

सिद्धक्षेत्रे महातीर्थे, पुराणपुरुषाश्रिते।
कल्याणकलिते पुण्ये, ध्यानसिद्धिः प्रजायते।। -*(ज्ञानार्णव : पृ० 263)*

अर्थः—श्री ऋषभदेव आदि त्रेसठ शलाका महापुरुषों से प्रभावित, कल्याण करने का एकान्त स्थान, पवित्र सिद्धक्षेत्र निर्वाणक्षेत्र जैसे पूज्य महान् तीर्थों पर आत्मध्यान करने से मुक्तिपद तथा स्वर्ग आदि श्रेष्ठ वैभव की प्राप्ति होती है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तीर्थवन्द्रना का विशेष मूल्यांकन-

श्रीतीर्थपान्थरजा विरजीभवन्ति
तीर्थेषु विभ्रमणतो न भवे भ्रमन्ति।
तीर्थव्ययादिह नराः स्थिरसम्पदः स्युः
पूज्याः भवन्ति जगदीशपथाश्रयन्तः।।

भावसौन्दर्य—तीर्थयात्राा की अथवा तीर्थमार्ग की धूलि (रज) से भव्यमानवक रजरहित (पापरहित) होते हैं। तीर्थक्षेत्रों पर भ्रमण (यात्रा) करने से श्रद्धालु मानव भव में भ्रमण नहीं करते हैं। तीर्थक्षेत्रों के निमित्त से सम्पदा के धनी होते हैं। पूज्य अर्हन्तों के मार्ग का अथवा पूज्य तीर्थक्षेत्रों का आश्रय लेने से मानव पूज्य हो जाते हैं अर्थात् नर से नारायण, भक्त से भगवान् और पारस से पार्श्वनाथ हो जाते हैं।

अपिच— **पावनानि हि जायन्ते, स्थानान्यपि सदाश्रयात्।**
सद्भिरध्युषिता धात्री, सम्पूज्येति किमद्भुतम्।।
कालायसं हि कल्याणं, कल्पते रसयोगतः।

अर्थः—महापुरुषों की संगति से स्थान भी महापवित्र हो जाते हैं, महापुरुषों के निवास से या चरणस्पर्श से वह मही भी महापूज्य हो जाती है। अर्थात् वह भूमि तीर्थ बन जाती है। इसमें आश्चर्य की क्या बात है जैसे कि रसायन अथवा पारस के संयोग से लोहा काला होने पर भी सुवर्ण बन जाता है।

पुरातत्व की अपेक्षासे भी जैनतीर्थों का मूल्यांकन सिद्ध होता है।

तीर्थ शब्द की विविध व्याख्यों से और अनेक अर्थों में प्रयुक्त होने से यह सिद्ध होता है कि तीर्थ क्षेत्र लौकिक दृष्टि से तथा पारमार्थिक दृष्टि से भी विश्व का कल्याणकारी हैं। इन तीर्थों ने पुरातत्व का स्मरण कराकर मानव की चेतना को सामूहिकरूप से तथा व्यक्तिगतरूप से जगाया है। इन तीर्थों ने मानव समाज की लुप्तप्रायः अथवा विकृत संस्कृति को सुसंस्कृत किया है। इन तीर्थों के प्रशान्त एवं एकान्त वातावरण में मन्दिरों की उच्चशिखरों और सिद्धान्त प्रतीक पताकाओं ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्रारूप मुक्ति के सन्देश को घोषित किया है। अतः पवित्र तीर्थ पूज्यनीय हैं, वन्दनीय हैं। **

...सुदधम्मो एत्थ पुण तित्थं।

—*(मूलाराधना, 557)*

अर्थः—श्रुतधर्म को इस लोक में 'तीर्थ' कहा जाता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कुन्दकुन्द स्वामी के एक दृष्टान्त पर विचार

–प्रो० (डॉ०) एम०डी० बसन्तराज

[प्रो० (डॉ०) एम०डी० बसन्तराज मद्रास विश्वविद्यालय एवं मैसूर विश्वविद्यालय के जैनविद्या एवं प्राकृत विभागों में शिक्षण-कार्य के अवकाश ग्रहणकर वर्तमान में शौरसेनी प्राकृतभाषा एवं साहित्य के स्वाध्याय में व्यस्त हैं। कन्नड़ भाषात्मक इस निबन्ध का हिन्दी अनुवाद प्रो० एम०पी०एल० कान्त के सौजन्य से पाठकों के विचारार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें प्रस्तुत विचार प्रो० बसन्तराजजी के मौलिक हैं, पाठकों के स्मरणार्थ यह निवेदन है।–*सम्पादक*]

विशेषतः भी दिगम्बर आम्नाय के जैनधर्मियों को कुन्दकुन्दाचार्य के प्रति अत्यन्त प्राचीनकाल से ही अपार पूज्यभाव रहा है। भगवान् महावीर और गौतम गणधर के बाद कुन्दकुन्द स्वामी के नाम को मंगलमय मानकर उनकी स्तुति निम्नप्रकार की गई है।

मंगलं भगवान्वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुंदकुंदार्यो जैनधर्मोस्तु मंगलं।।

इस स्तुति का प्रधानकारण यह है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने अपनी कृतियों में पूर्वाचार्यों द्वारा प्राप्त अवशिष्ट ज्ञान-परम्परा को सर्वप्रथम लिपिबद्ध कर जैनधर्म की मौलिकता और श्रेष्ठता का स्पष्ट रीति से कथन किया है। भगवान् महावीर के बाद परमर्षि गौतम गणधर के शिष्य-प्रशिष्यों के क्रम में बचकर आये द्वादशांगश्रुत के अवशेष भाग को जिस समय लिपिबद्ध कर पुस्तकारूढ़ किया गया था, उस समय कुन्दकुन्दाचार्य भी विद्यमान थे। आपने अपनी कृतियों में बारहवें दृष्टिवादांग के चौथे भाग चतुर्दश पूर्वों के अंतर्विभागों के अनेक अवशिष्ट पाहुडों का संकलन किया है। विद्यामहोदधि डॉ० आ०ने० उपाध्ये ने भी इसी अभिप्राय को व्यक्त किया है।[1] वास्तव में आध्यात्मिक विषयों को सुननेवालों के मन में स्पष्ट हो जाये–ऐसे आकर्षक तथा सरल ढंग से कहना बहुत कठिन है। किंतु कुन्दकुन्दाचार्य की कृतियों में इस कठिनाई की छाया तक नज़र नहीं आती। श्रद्धालुओं को ये कृतियाँ भगवान् महावीर की दिव्यवाणी का श्रवण करातीं हैं। जो कहना चाहिए उस विषय को स्पष्ट करने के लिए जनसाधारण के अनुभव में आ जाये–ऐसे दृष्टांतों को आपकी कृतियों में अनेकत्र देखा जा सकता है। यहाँ विषय और दृष्टान्त बिम्ब-प्रतिबिम्ब जैसे हैं। काव्य में ये ही दृष्टांत अलंकार माने जाते हें। ऐसे ही एक दृष्टांत को लेकर यहाँ समीक्षा की जा रही है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दो वर्ष पूर्व दशलक्षण पर्व के अवसर पर प्रवचन करने के लिए श्रवणबेलगोला गया था। वहाँ पर एक दिन "भंडारी बसदि'' के प्रवचन के बाद भट्टारक जी अपने साथ मुझे भी भट्टारक भवन ले गये। वहाँ ओर भी कई लोगों के सम्मुख हमारे धर्म और साहित्य को लेकर विचार-विनिमय होता रहा। सहसा उस समय उन्होंने 'प्रवचनसार' ग्रंथ को हाथ में लेकर पूछा "इस गाथा में जो दृष्टान्त दिया गया है, उसके औचित्य के बारे में आपका क्या अभिप्राय है''? यह कहकर वह ग्रन्थ मेरे हाथ में दे दिया। स्वाध्याय-निमित्त कई बार मैंने यद्यपि प्रवचनसार का पठन किया था, किन्तु भट्टारक जी ने उस गाथा में जिस दृष्टान्त की विषमता दिखायी, वह कभी भी मेरी समझ में नहीं आयी थी। आचार्य कुन्दकुन्द किसी भी संदर्भ में हो, विषमभाव के दृष्टान्त का उपयोग नहीं करेंगे –यह मेरा अटल विश्वास रहा और श्रद्धा रही है। गाथा का अर्थ गलत रीति से समझा जा रहा है, इस भावना से उस गाथा की अमृतचन्द्रसूरि द्वारा लिखित टीका की ओर स्थूल रीति से ध्यान लगाया। उसी तरह जयसेनाचार्य की टीका देखी, इससे दृष्टांत की विषमता और दृढ़ हो गई, परिहार नहीं मिला। मेरा मन और अधिक असमंजस में पड़ गया। इस गाथा के अर्थ को समझने में हम कहीं मार्ग छोड़कर भूल कर रहे हैं –ऐसी भावना मेरे मन में बची ही थी। उक्त सन्दर्भित गाथा और उसकी टीकाएँ निम्नप्रकार हैं–

अमृतचन्द्रसूरि के पीठिका वाक्य

अनंतर केवलियों की क्रिया क्रियाफल को (अर्थात् पुण्य-पाप बंधरूपी फल को) करती नहीं (आगे की गाथा में) –ऐसा कहते हैं–

ठाण–णिसेज्ज–विहारा धम्मुवदेसो य णियदयो तेसिं।
अरिहंताणं काले मायाचारोव्व इत्थीणं।। 44।।

अर्थः–अमृतचन्द्रसूरि की 'तत्वप्रदीपिका' वृत्ति के अनुसार–जिस प्रकार महिलाओं के प्रयत्न के बिना भी (उनमें) उसप्रकार की योग्यता के होने के कारण स्वाभाविकरूप से ही माया के परदे से छिपा (कुटिल-धोखे का) व्यवहार प्रवर्तित होता है; उसी तरह केवलियों के प्रयत्न के बिना ही खड़े होना, बैठना, विहार करना और धर्मोपदेश करना भी (उनमें) उस प्रकार की योग्यता के होने के कारण स्वाभाविकरूप से ही प्रवर्तित होते हैं।

यदि यही कहना हो, तो यह बादल के दृष्टान्त के साथ विरोध होता नहीं है। जिसप्रकार बादल के रूप में प्राप्त पुद्गलों का चलन, रूकना, गर्जन, पानी का बरसना भी पुरुष-प्रयत्न के बिना भी दिखलाई पड़ते हैं; उसी तरह केवलियों का

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

रूकना आदि बिना बुद्धिपूर्वक ही होते हैं —ऐसा दिखलाई पड़ता है। अत: यह रुकना आदि मोहोदयपूर्वक न होने के कारण क्रियाविशेष होते हुए भी ये क्रियाफल बंध के कारण नहीं होते हैं।

जयसेनाचार्य की टीका के अनुसार

केवलियों को रागादि न होने के कारण धर्मोपदेश आदि भी कर्मबंध के कारण नहीं होते ऐसा कहा गया है। ठाणणिसेज्ज विहारा धम्मुवदेसो य स्थान= (ऊर्ध्व-स्थिति, निषद्या=आसन, विहारा=विहार, धर्मोपदेशा च=धर्मोपदेश भी, णियदयो=ये व्यापार, विधि, स्वाभाविक है, इच्छापूर्वकरहि हैं; केषां=किसको? तेसिं अरिहंताणं=निर्दोषी परमात्मा उन अरिहंतों को, क्व=कहाँ (कब), काले=अर्हदावस्था में, कहंव=किस प्रकार? मायाचार इव स्त्रीणां=स्त्रियों के मायाचार जैसे, अर्थात जिसप्रकार स्त्रियों को स्त्रीवेद के उदय के होने से प्रयत्न के बिना ही मायाचार प्रवर्तित होता है, उसी प्रकार शुद्धात्मतत्व के प्रतिपक्षरूपी मोहोदय कार्यरूप इच्छापूर्वक प्रयत्न के बिना भी श्रीविहार आदि प्रवर्तित होते हैं, अथवा मेघों (बादलों) का रूकना, चलना, गर्जन, पानी बरसाने को इसके दृष्टान्त के रूप में देख सकते हैं। अत: मोहादि के अभाव के कारण क्रियाविशेष भी (कर्म-) बंध का कारण नहीं होगा, ऐसा निर्धारण हुआ।

ऊपर दिए विवरण के अनुसार गाहा में अरिहंत का स्थान, आसन, विहार, धर्मोपदेश इच्छापूर्वक प्रयत्न के बिना ही स्वाभाविक रीति से प्रवर्तित होते हैं (और इस कारण ये क्रियाएँ कर्मबंध की कारण नहीं होती) —ऐसा कहकर इसे स्त्री के मायाचार.की प्रवृत्ति को दृष्टान्त के रूप में कहा है। दृष्टान्त की प्रस्तावित मूलभूत वस्तु के साथ हर प्रकार से समानता होनी चाहिए थी, किन्तु यहाँ ऐसा नहीं है। वह साध्य भी नहीं है। किंतु कई मुख्य अंशों से गुण-साम्य तो होना ही चाहिए, तभी वे परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्बात्मक रहेंगे। ऐसा न होकर परस्पर विरोधीभाव के गुणवाले होने से दृष्टान्त विषमता का होगा और ऐसा दृष्टान्त मूलभूत वस्तु के निजभाव के अर्थ को स्पष्ट नहीं कर सकेगा।

प्रस्तुत प्रसंग में लोकपूज्य अरिहंत भगवान का रूकना, बैठना, विहार और धर्मोपदेश आदि उनकी इच्छा के प्रेरणापूर्वक यत्न के बिना ही होनेवाली स्वाभाविकता के स्पष्टीकरण के लिए स्त्री की माया-प्रवृत्ति की स्वाभाविकता को दृष्टान्त के रूप में दिया गया है —ऐसा अर्थ लगाया गया है। अरिहंत भगवान् (स्थान) का रूकना, निषद्या, विहार और धर्मोपदेश की क्रियाएँ अत्यन्त भव्यात्मक है। इनको प्रतिबिम्बित करनेवाला कोई भी गुण "माया" में नहीं है। यही नहीं अरिहंत की इन क्रियाओं

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

में धर्मोपदेश की क्रिया संसार के दु:ख का परिहारकारक है और परमसुख का कारण होकर वह स्तुति करने योग्य तथा पूजनीय है। इसकी स्वाभाविकता को संसार में जो निंदनीय है, संसार को छलकर, धोखा देकर दु:ख के कारण होने वाली माया की स्वाभाविकता उसका प्रतिबिंब नहीं हो सकता। अत: यह केवल निंद्यात्मक विषम दृष्टान्त कहलायेगा।

'माया स्त्री के लिए स्वाभाविक है' –ऐसी लोकोक्ति के होने पर भी वह स्त्री की इच्छा की प्रेरणा के बिना कहा नहीं जा सकता कि वह क्रियाशील होती है। एक न एक प्रकार के अपने दोष को छिपाने के लिए व्यक्ति की इच्छा की प्रेरणा से मायाचार की प्रवृत्ति होती है। सैद्धान्तिक तौर पर कह सकते हैं कि माया मात्र स्त्रीकुल तक ही सीमित नहीं है। चारित्रमोहनीय कर्म के निमित्त से पुरुष, स्त्री और नपुंसक जैसे भेदभाव के बिना ही सब लोगों में मायाचार होता ही है। केवल ऊँच-नीच के भाव से ज्यादा-कम रीति का अंतर है। इस तरह माया स्त्रीकुल तक सीमित न होने के कारण अधिक व्याप्ति प्राप्तकर दृष्टान्तरूप से उसका परिणाम कुंठित होता है। काव्यशास्त्र में हीनोपमा अथवा नीच उपमा का निषेध है। इसे खोलकर कहने की आवश्यकता नहीं है कि वह दृष्टान्तों को भी लागू होता है। अरिहंत के परमपावन और लोकोत्तर धर्मोपदेश की तरह श्रेयो गुण और स्त्री का संसार को ठगनेवाली माया जैसे दुर्गुण –इन दोनों के बीच परस्पर विरोध के होने के बिना समानता तो है ही नहीं। अत: प्रस्तुत दृष्टान्त सर्वथा विषम दृष्टान्त है। अमृतचन्द्रसूरि को तथा उनका अनुसरणकर टीका लिखनेवाले जयसेनाचार्य को भी इस दृष्टान्त की असमर्पकता अथवा विषमता ध्यान में आयी है –ऐसा परोक्षरीति से सूचित होता है। इसकारण से अमृतचन्द्रसूरि जी ने "अपि च अविरुद्धमेतद् अंभोधर दृष्टांतात्" –ऐसा कहकर पीछे उल्लिखित बादल का दृष्टान्त दिया है। जयसेनाचार्य जी ने भी इसी दृष्टान्त का पुनरुच्चार किया है।

प्रस्तुत प्रसंग में यह समझना चाहिए कि आचार्यश्री कुन्दकुन्द अन्य प्रसंगों में दिए गये दृष्टान्त किस तरह सुसंगत एवं समुचित होकर प्रस्तावित विषय के अर्थ को सम्पर्क रीति से स्पष्ट कर लेते हैं।

दंसणपाहुड:

1. सम्यक्त्वरूपी जलप्रवाह जिसके ऋदय में सदा प्रवाहमान हो, उसे कर्मरूपी रेत के आवरणबद्ध रहने पर भी वह कर्म के नाश को प्राप्त करेगा। (गाथा 7)

2. जिसप्रकार जड़ के नष्ट होने से पेड़ के (कांड, छिलके आदि) परिवार की

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वृद्धि नहीं होती है, उसीप्रकार जिनदर्शनभ्रष्ट लोग आंतरिक यथार्थ श्रद्धान् जैसे मूल को नष्टकर सिद्धि की प्राप्ति नहीं करते हैं। (मूलरूप सम्यग्दर्शन के होने मात्र से ज्ञान और चारित्र सम्यक्रूप को प्राप्तकर सिद्धिदायक होंगे (गाथा-20)

3. यह जिनवाणी औषधि है, 'इन्द्रिय-विषय सुखदायक हैं–इन गलत कल्पना का विरेचक है; यह अमृत का फल है, जो वृद्धावस्था (जरा), मरण, व्याधियों का निवारक है तथा सर्वदुःखों का क्षयकारक भी है। (गाथा-27)

बोधपाहुड़:

4. जिसका मतिरूपी धनुष स्थिर हो, श्रुतज्ञानरूपी डोरी (गुण) हो, रत्नत्रय रूपी बाण हो, परमार्थ (शुद्धात्मा) लक्ष्य हो, उसे मोक्षमार्ग की च्युति नहीं होती। (गाथा-23)

भावपाहुड़:

5. हे क्षमागुण संपन्न मुनिवर ! पूर्वोक्त रीति से क्षमागुण के महत्त्व को समझकर त्रिकरणपर्वूक समस्तजीवों को क्षमा करो, चिरकाल से संचित क्रोधरूपी अग्नि की ज्वाला का श्रेष्ठ क्षमारूपी जल से सिंचन करो। (गाथा-201)

6. जिसप्रकार बीज दग्ध हो जाए, तो भूमि पर अंकुर नहीं पैदा होता; उसीप्रकार कर्मरूपी बीज दग्ध हो जाय, तो भावलिंगी श्रमणों को भव (संसार) रूपी अंकुर पैदा नहीं होता। (गाथा-126)

पंचत्थिकायसंगहो

7. जिसप्रकार पद्मरागमणि को दूध में डालने से वह दूध को पूर्णरूप से गुलाबी आभायुक्त करता है, उसीप्रकार आत्मा देह में रहते हुए अपने देहप्रमाण को प्रकाशित करती है और ज्ञान से परिपूर्ण कर देती है। (गाथा-33)

8. जिसप्रकार आसमान में सूर्य स्वयं प्रकाशमान होकर देव-पद प्राप्त कर चुका हो, उसीप्रकार सिद्ध भगवान् भी लोक में ज्ञानमय, सुखमय देव होकर विराजमान हैं। (गाथा-68)

उपर्युक्त प्रस्तावित विषय के साथ हरप्रकार से समानता को प्राप्त और भी कई दृष्टान्तों को कुन्दकुन्दाचार्य की कृतियों में देखा जा सकता है।

प्रस्तुत लेखक के मन में यह स्पंदन बचा ही रहा कि ऐसी दशा में अरिहंत के परमार्थ की स्थानादि क्रियाएँ स्वाभाविक हैं, इसकेलिए विषमता से युक्त नारी की माया की स्वाभाविकता को आचार्य कुन्दकुन्द ने दृष्टान्त के तौर पर दिया हो –इसकी संभावना ही नहीं है। मुद्रित पुस्तकों के आधार ताड़पत्र ग्रंथ की किसी एक

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रति में क्या ऐसे दोषपूर्ण पद-प्रयोग की संभावना है? इस प्रश्न का उदित होना स्वाभाविक है। किंतु अमृतचन्द्रसूरि और आचार्य जयसेन दोनों ने उसी समय पर इसी पद-प्रयोग को स्वीकार कर टीका की है, इस कारण से यह प्रश्न निराधार साबित हुआ। इतना ही नहीं, अनेक आधार-ग्रंथों के अनुसंधान द्वारा डॉ० ए०एन० उपाध्ये द्वारा संपादित प्रवचनसार में भी इसी पद-प्रयोग के होने से क्या आधारग्रंथों में भी दोषपूर्ण प्रयोग हुआ होगा? —यह प्रश्न बचा नहीं। अत: प्रस्तुत "मायाचारोव्व इत्थीणं'' इस पद का अर्थ लगाने में ही क्या गलती की संभावना तो नहीं है? ऐसी शंका मन में उदित होने पर भी अमृतचन्द्रसूरि और आ० जयसेन जैसे अध्यात्म-विद्या प्रवर द्वारा कहे गए अर्थ में शंका प्रकट करना 'अतिचार' मानकर मौन रहना पड़ा। इतना होने पर भी कुन्दकुन्द ने ऐसे विषमार्थ के दृष्टान्त को नहीं दिया होगा, —ऐसी शंका तो निर्मूल नहीं हुई।

एक बार तत्त्वार्थसूत्र में तीर्थंकर नामकर्म-बन्ध की कारणभूत सोलह भावनाओं के समर्थक कोई न कोई उल्लेख आचार्य कुन्दकुन्द की कृतियों में क्या कहीं प्राप्त होगा, —इस दृष्टि से अष्टपाहुड़ की गाथाओं को देख रहा था; उस संदर्भ में आगे की गाथा ध्यान में आयी—

दियसंगट्ठियमसणं आहारिय मायभुत्त मण्णांते।
छदिदसरिसाण मज्झे जढरेवसिओसि जणणीए।। —*भावपाहुड, 40*

अर्थ:—माता के खाये अन्न को अंत में दांतों के संपर्क में रहकर हुए जूठे आहार को लेकर (खाकर) वमन किया हुआ और रक्तलेप को प्राप्त मल के बीच माता के पेट में वास किया था।

ध्यान दीजिए — श्रुतसागरसूरी जी के संस्कृत अनुवाद से युक्त षट्प्राभृत में 'मायभुत्तमण्णांते' के बदले में 'मायभुत्तमण्णंते' पाठ है।

इस गाथा में प्रस्तुत प्रसंगवश मुख्य तौर पर ध्यान देने की बात यह है कि 'माता' के अर्थ में "माय'' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसे संस्कृत छाया में "मातृ'' शब्द का रूप दिया गया है। "मायभुत्तं'' का संस्कृतरूप "मातृभुक्तं'' है। यह समासपद है। इसका विग्रह वाक्य है "मात्रा भुक्तं''। समासों के साधारण नियम के अनुसार अंतिम पद को छोड़कर अन्य पद (विभक्ति, वचन, प्रत्ययों को छोड़कर) प्रातिपदिक या प्रकृतिरूप को प्राप्त करते हैं। इस नियम के अनुसार "मात्रा भुक्तं'' में 'मात्रा' पद प्रकृतिरूप होकर 'मातृ' होता है। प्राकृतभाषा में ऋकार न होने के कारण ऋकारांत पद अकारांत इकारांत आदि रूप प्राप्त करते है। इसके अनुसार 'मातृ' शब्द 'मात' होता है। प्राकृत के ध्वनि-व्यत्यय नियम को लेकर पदमध्यवर्ति

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

असंयुक्त व्यंजन "त्'' वर्ण च्युति को प्राप्त करता है और इसके साथ रहकर (त+अ) बचा हुआ अ'कार 'य' श्रुति प्राप्त करता है।

(प्रायो लुक् क-ग-च-ज-त-द-प-वां', १०३०८ और 'य श्रुति रः' 2.3.:20 (त्रिविक्रम-प्राकृतशब्दानुशान)

इस रीति से संस्कृत 'मातु' शब्द 'माय' प्राकृतरूप को प्राप्त करेगा। इसीप्रकार संस्कृत का 'मातृ' शब्द प्रथमाविभक्ति एकवचन में "माता'' रूप जैसे प्राप्त करता है, वैसे प्राकृत 'माय' शब्द 'माया' रूप धारण करेगा। उदाहरण के लिए 'मूलाचार-अनगारभावनाधिकार' में

वसुधम्मि वि विहरंता पीडं ण करेंति कस्स वि कयावि।
जीवेसु दयावण्णा माया जह पुत्तभंडेसु।। 32।।

इस गाथा में स्थित "माया'' पद (माता यथा पुत्र भांडेषु) माता के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'चउपन्न महापुरिस चरियं' में (पृ० 42) 'सव्वस्स पिया-माया-बंधु' वाक्य भाग को भी ध्यान में ला सकते हैं। पर कहा गया 'माय' शब्द भुत्तं पद के साथ समासरूप प्राप्तकर पहले उल्लिखित भावपाहुड की गाथा (40) में स्थित 'मायभुत्तं' रूप प्राप्त किया है। इसी तरह 'माय' शब्द 'आचारो' पद के साथ समास प्राप्त कर, पीठे उल्लिखित प्रवचनसार के गाथा में (2-44) स्थित, (माय+आचारो-सवर्णदीर्घ संधि) 'मायाचारो' रूप प्राप्त करेगा। इसके साथ 'त्व' शब्द संधि प्राप्तकर 'मायाचारोव्व' होकर 'मातृ के आचार जैसे' अर्थ प्राप्त किया है। 'मातृ आचार' धर्म स्त्रीमात्र को नियत हुए अत्यन्त सहज स्वाभाविक क्रिया है। गर्भधारण, गर्भस्थ शिशुपोषण, प्रसव करना और स्तन्यपान कराना –ये मातृ की अत्यंत स्वाभाविक क्रियाएँ आचरण हैं। ये स्त्रीमात्र को नियत है। इस मातृ-आचरण को लेकर लोक में माया शब्द को लेकर जो भाव है, वह निन्द्य भाव नहीं है; बल्कि गौरव/आदर/पूज्यता का भाव है। परमार्थिक दृष्टि से अरिहंत परमपूज्य है। उसी तरह लौकिक दृष्टि से मातृ-माता पूजनीय है। "अरिहंत ने आर्हत्य को प्राप्त करने के पहले मातृ से जन्म लिया है'', इसप्रकार के गौरव-भाव को ही यहाँ ध्यान में लाना चाहिए। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की यही धारणा है कि मातृधर्म के उक्त आचरण (अर्थात् मायाचारोव्व) की स्वाभाविकता "अरिहंत भगवान के स्थान, आसन, विहार एवं धर्मोपदेशों की स्वाभाविकता को स्पष्ट करानेवाले बिंब-प्रतिबिंब के रूप का उत्तम दृष्टान्त है'', कहने में गलत न होगा। इससे युगप्रधान आचार्य कुन्दकुन्द ने असमर्पक, स्त्री-निंदात्मक दृष्टान्त दिया है, यह धारणा भी दूर हो जायेगी।

**

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पुस्तक समीक्षा

(1)

पुस्तक का नाम : जैनभजन सौरभ
अनुवाद : डॉ० कमलचन्द सोगाणी
प्रकाशक : जैनविद्या संस्थान, दि० जैन अति० क्षेत्र महावीर जी (राज०)
प्रकाशन वर्ष : प्रथम सं० 1996, मूल्य-दस रुपये, पृष्ठ-104 (डिमाई)

जैनसमाज में भजनों की पुस्तकों की कोई कमी नहीं है, लगभग हर ग्राम-नगर से व्यक्तिगत एवं अन्य कवियों के भजनों की अनेकों प्रस्तुकें आज तक प्रकाशित हो चुकी हैं। किन्तु आजकल प्रकाशित होनेवाले भजन-साहित्य में साहित्यिकता एवं विषय की गंभीरता का तो प्राय: अभाव ही है; रही-सही कसर फिल्मी धुनों पर बननेवाले भजनों ने पूरी कर दी है, जिनके बोल तो कुछ धार्मिक जैसे होते हैं; परन्तु जिनको बोलते-सुनते समय फिल्मी धुनें गुनगनायीं जाती हैं। -ऐसे विपरीत वातावरण में प्राचीन आध्यात्मिक कवियों के विषय एवं शैली-दोनों दृष्टियों से आदर्श भजनों का संग्रह एक गरिमापूर्ण संस्थान से प्रामाणिक ढंग से प्रकाशित होना तथा उसके लिए डॉ० सोगाणी जी जैसा अनुवादक एवं मार्गदर्शक उपलब्ध हो जाना, एक सुखद अवसर है।

प्रस्तुत कृति में कविवर द्यानतराय जी, भूधरदास जी, बुधजन जी, दौलतराम जी, एवं भागचन्द जी आदि सुप्रसिद्ध साहित्यिक विद्वान् कवियों के द्वारा रचित भजनों में से चुने गये उत्कृष्ट भजनों का संकलन एवं प्रामाणिक अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। प्रास्ताविक वक्तव्य में कवियों एवं भजनों के वर्ण्य-विषय के बारे में संक्षिप्त, किंतु व्यवस्थित जानकारी दी गयी है। एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि संग्रहीत भजनों में से अधिकतर भजनों के राग-रागनियों आदि का शीर्षकरूप में उल्लेख भी किया गया है। अंत में अकारादिक्रम से संग्रहीत भजनों की सूची दी गयी है।

पुस्तक पेपरबैक बाइंडिग में नयनाभिराम मुद्रण एवं उत्कृष्ट कागज के साथ सूक्ष्मनिरीक्षणपूर्वक प्रकाशित हुई है। सुसंस्कारित जनों के लिए यह एक आदर्श संग्रहणीय कृति है।

-सम्पादक

(2)

पुस्तक का शीर्षक : अपभ्रंश का जैन रहस्यवादी काव्य और कबीर
लेखक : डॉ० (श्रीमती) सूरजमुखी जैन
प्रकाशक : कुसुम प्रकाशन, नवेन्दु सदन, आदर्श कालोनी, मुजफ्फरनगर।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रकाशन वर्ष : 1996, मूल्य-दो सौ रुपये, पृष्ठ-288 (डिमाई)

डॉ० श्रीमती सूरजमुखी जैन ने प्राचीन भाषा अपभ्रंश में निहित जैन रहस्यवादी आध्यात्मिक संतों एवं कवियों की उस अज्ञातप्राय: धरोहर एवं उनके आध्यात्मिक महत्त्व के विचारबिन्दुओं को अपने इस शोध-प्रबन्ध में अत्यन्त श्रमपूर्वक उजागर किया है। इसमें कुल सात अध्यायों के द्वारा रहस्यवाद की परिभाषा, उसकी परम्परा, उसके प्रवर्तक एवं पोषक व्यक्तित्वों का परिचय, विषय का विश्लेषण, जैन परम्परा एवं कबीर के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन आदि का विशद विश्लेषण किया गया है।

आधुनिक शोधदृष्टि से समन्वित शैली में जैनपरम्परा का प्रभाव जो जैनेतर परम्पराओं के संत कबीर जैसे व्यक्तियों पर पड़ा है, उसका समीचीन मूल्यांकन इस कृति में परिलक्षित् होता है।

यद्यपि वर्तनी एवं प्रूफ-सम्बन्धी कुछ और सावधानी अपेक्षित थी, परन्तु समग्र दृष्टि से अवलोकन करने पर पुस्तक का विषय एवं आकार-प्रकार दोनों ही स्पृहणीय हैं। शोधकर्त्ताओं एवं स्वाध्यायीजनों दोनें को यह कृति संग्रहणीय है।

उक्त कृति के लेखक एवं प्रकाशक – दोनों ही बधाई के पात्र हैं। –सम्पादक

(3)

पुस्तक का नाम : तीर्थंकर (मासिक) का 'ॐ' विशेषांक, अप्रैल 1996
प्रकाशक : हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर (म०प्र०)
संपादक : डॉ० नेमीचन्द्र जैन
प्रकाशन वर्ष : 1996 मूल्य-(इस अंक का) सौ रुपये, पृष्ठ-152

जैन-पत्रकारिता जगत् में डॉ० नेमीचन्द जी एक मिथक बन चुके हैं। उनके अनेकों कार्य पत्रकारिता के क्षेत्र में ऐतिहासिक महत्त्व की सम्पत्ति है। लीक से हटकर लिखना, श्रमपूर्वक तथ्यों का संयोजन एवं उनका सुसंपादन उनकी प्रतिभा एवं लगन को दर्शाता है। चिंतन को एकांगी न बनाकर उसे बहुआयामी बनाना एवं तथ्यों न विचारों का सुन्दर संतुलन उनकी संपादन शैली की विशेषता है। –ये सभी बातें उनके इस महत्त्वपूर्ण 'ॐ' विशेषांक में भी प्रतिबिम्बित हैं।

विविध क्षेत्रों के लगभग बयालीस लेखकों एवं कवियों के लेख, शोध तथ्य, कवितायें एवं सूचनाओं के साथ-साथ आचार्यश्री विद्यानन्द जी से ली गयी भेंटवार्ता अनेकानेक महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को उजागर करती है। प्राय: सभी लेखकों की रचनायें इस विषय में नवीन तथ्यों के साथ-साथ बहुविधरूपों में 'ज्ञानभोजन' प्रस्तुत करती हैं।

विज्ञजनों के लिए यह अंक निस्संदेह संग्रहणीय एवं स्पृहणीय है। –सम्पादक

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पुस्तक का नाम : Contribution to Jainism to Ayurveda
अनुवाद : डॉ० (श्रीमती) रेखा जैन, एम०ए०, पी०एच०-डी०
प्रकाशक : चकोर पब्लिकेशन्स, पुणे (महाराष्ट्र)
प्रकाशन वर्ष : जनवरी 1991, मूल्य-एक सौ दस रुपये, पृष्ठ-119

'आयुर्वेद को जैनधर्म की देन' विषयक अंग्रेजी में लिखित प्रस्तुत ग्रन्थ चिकित्सा शास्त्रीय शोध-जगत् में एक नई क्रान्ति एवं ऊर्जा शक्ति लिये है। प्राच्य साक्ष्यों के आधार पर जैन आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति को सिन्धु-सभ्यता से भी प्राचीन मानते हुए, उसे जैनधर्म के तीन प्रमुख सिद्धान्तों-अनेकान्तवाद, अहिंता एवं श्रमणाचार से लोक स्वास्थ्य जो जोड़कर उन्हें आयुर्वेद के मूल सिद्धान्तों की आधारशिला बतलाया है।

विदुषी लेखिका ने जैनायुर्वेद-सम्बन्धी उत्कृष्ट कोटि के लगभग तीन दर्जन ग्रन्थों के नामोल्लेख कर उनके वैशिष्ट्य की चर्चा की है, इसीप्रकार आयुर्वेज्ञ अनेक जैनाचार्यों की सूची प्रस्तुत कर उसने आचार्य समन्तभद्र, पूज्यपाद, सिद्धनागार्जुन एवं उग्रादित्य की स्वास्थ्य-चिकित्सा के क्षेत्र में विशिष्ट अवदानों की चर्चा की है। तदनुसार आचार्य समन्तभद्र के 'सिद्धरसायनकल्प' नामक ग्रन्थ में वर्णित औषधियों के नाम जैनदर्शन की पारिभाषिक शब्दावली के नाम पर रखे गए हैं; जैसे तीन रसायनों के सम्मिश्रण से तैयार 'रत्नत्रय-औषधि' वात, पित्त, कफ के त्रिदोषजन्य विषम-ज्वर को दूर करने के लिए प्रयुक्त दी जाती थी। इसप्रकार की औषधियों की व्याख्या के लिए आचार्य अमृतनन्दि ने एक 'निघण्टुकोष' की रचना की थी।

जैनाचार्यों द्वारा वर्णित उक्त विषय दुर्भाग्य से अद्यावधि उपेक्षित ही होता रहा है। लेखिका ने उक्त विषय पर सर्वप्रथम शोधकार्य कर अपने असीम साहस एवं धैर्य का सराहनीय परिचय दिया। यद्यपि इसमें भी सन्देह नहीं कि विषय की अनेकविध विशेषताओं के कारण तद्विषयक विविध विषयों पर अभी भी अन्य अनेक शोध-प्रबन्ध लिखे जा सकते हैं। उक्त ग्रन्थ तो इस दिशा में मात्रा एक आदर्श उदाहरण है, जो आगामी शोधार्थियों के लिए नवीन प्रेरणा एवं विचार प्रेषित करेगा।

लेखिका ने विषय की प्राचीनता को सिद्ध करने हेतु ऐतिहासिक साक्ष्यों के चित्र भी प्रस्तुत किए हैं, जिनसे ग्रन्थ की प्रामाणिकता स्वतः बढ़ जाती है।

प्रकाशन नयनाभिराम बन पड़ा है। प्रूफ की कुछ अशुद्धियाँ अवश्य ही खटकने वाली हैं। बाकी कुल मिलाकर ग्रन्थ पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय है।

–प्रो० (डॉ०) राजाराम जैन **

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अभिमत

◎ आपकी 'प्राकृतविद्या' पत्रिका मुझे नियमितरूप से प्राप्त हो रही है। यद्यपि मठ में प्रायः समस्त देश भर की जैन पत्र-पत्रिकायें आती हैं, किन्तु उन सभी में सर्वोच्च प्राथमिकता के साथ आद्योपान्त मैं इसी का स्वाध्याय करता हूँ - इसका कारण इस पत्रिका की विषय-वस्तु एवं सम्पादन शैली का गौरव है। इसमें दिनोंदिन परिमार्जन होता जा रहा है। यों तो इसमें प्रत्येक लेख, टिप्पणी आदि सभी कुछ पठनीय होता है; किन्तु 'समयसार के पाठ' स्तम्भ से मैं विशेषतः प्रभावित हूँ। इसमें प्रस्तुत किये गयें शोधपूर्ण एवं प्रामाणिक प्रस्थापनों ने मुझे मठ में स्थित सभी प्राचीन ताड़पत्रीय प्रतियों को पुनः देखने को विवश कर दिया। मुझें अत्यन्त हर्ष है कि मुनि बालचन्द्र जी की कन्नड़ टीकावाली देश की सर्वाधिक प्राचीन समयसार प्रति में तथा अन्य समस्त प्रतियों में वे ही पाठ हैं, जिनकी आपने अपने स्तम्भ में सत्यता प्रमाणित की है। प्राचीन प्रतियों के आधार बनाकर समयसार के शुद्ध, मूल एवं प्रामाणिक पाठों के निर्धारण का जो बीड़ा आपने उठाया है, वह निश्चय ही स्तुत्य, अभिनंदनीय एवं अनुकरणीय है। यह 'खरा सो मेरा' की उक्ति को सार्थक करता है। 'वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः' की उक्ति के अनुसार आपने मुझे समयसार की विभिन्न प्रतियों के अवलोकन से सत्य के निर्णय का जो प्रसंग प्रदान किया है, वह एक उपलब्धि है।

इस अंक के सम्पादकीय में प्रो० नथमल जी टांटिया के विचारों को पढ़कर बहुत प्रमोद हुआ। वे महान् स्पष्टवादी विद्वान हैं। उनके वचन शौरसेनी के उत्थान एवं प्रचार-प्रसार में संजीवनी का काम करेंगे। अब इसमें कोई सन्देह की गुंजाइश नहीं रह गयी कि 'शौरसैनी' ही मूल प्राकृत है।

आप इसी तरह उन्नति करें - इस आशीर्वाद के साथ।

–श्री चारुकीर्ति पी० भट्टारक स्वामी जी, *श्री जैनमठ, मूड़बिद्री (कर्नाटक)* **

◎ 'प्राकृतविद्या' वास्तव में उच्चकोटि की आदर्श पत्रिका है। इसमें प्रकाशित प्रायः समस्त सामग्री शोध-खोजपूर्ण होती है। इससे पाठकों को एक नई जानकारी मिलती है। इस अंक में प्रकाशित 'श्रमण-परम्परा', 'जैनधर्म-दर्शन विश्वव्यापित्वः कतिपय तथ्य' और 'प्राचीन जैन साहित्य में पाटलिपुत्र' शीर्षक लेख विशेषरूप से पठनीय हैं। ऐसे उच्चकोटि के प्रकाशन के लिए सम्पादक तथा प्रकाशक हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

–डॉ० उदयचन्द्र जैन, सर्वदर्शनाचार्य, *बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय* **

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

◎ प्रो० (डॉ०) नथमल जी टाँटिया के शौरसेनी प्राकृत की प्राचीनता-सम्बन्धी विचार अत्यन्त क्रान्तिकारी, विचारोत्तेजक तथा भाषात्मक इतिहास को नया क्रान्तिकारी मोड़ देनेवाले लगे। वस्तुतः शौरसैनी प्राकृत अद्यावधि उपेक्षित एवं गौरवगरिमा से विहीन जैसी प्रतीत होने लगी थी। यद्यपि पिशैल जैसे भाषावैज्ञानिकों ने उसकी प्राचीनता एवं उसके महत्त्व को स्थापित करने का प्रयत्न किया था, किन्तु उनके वे विचार सम्भवतः बहुप्रचारित न हो सके। तत्पश्चात् डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ० सुकुमार सेन एवं सात्कौड़ी मुखर्जी के सुशिष्य एवं चिन्तक मनीषि डॉ० टाँटिया जी सम्भवतः सर्वप्रथम विद्वान् हैं, जिन्होंने निर्भीकता पूर्वक यह घोषित किया कि न केवल श्वेताम्बर आगम साहित्य, बल्कि बौद्ध पिटक साहित्य भी शौरसेनी प्राकृत में लिखित था; जिसकी मूलभाषा किन्हीं कारणों से परवर्त्ती कालों में क्रमशः मागधी एवं अर्धमागधी प्राकृत में परिवर्तित प्राप्त होती है। निश्चय ही डॉ० टाँटिया के ये विचार क्रान्तदर्शी तथा नई पीढ़ी के लिए मार्ग-निर्देशक सिद्ध होंगे तथा अभी तक व्याप्त भाषाई भ्रम के धुन्ध को दूर करने में सक्षम सिद्ध होंगे।

–प्रो० राजाराम जैन, आरा **

◎ तर्कवागीश श्रीमान् डॉ० नथमल टाँटिया जैन जगत् के प्रसिद्ध तर्कशास्त्री हैं। वे एक जाने-माने भाषाविद् भी हैं। शौरसैनी, अर्धमागधी, पाली आदि प्राकृतों के ज्ञाता एवं संस्कृत के भी मूर्धन्य विद्वान् हैं। ऐसे मनीषी चिन्तक के शौरसैनी-सम्बन्धी विचार शौरसेनी की गरिमा को अधिक बढ़ाते हैं।

भरतमुनि ने जिस शौरसेनी की प्रकृति पर प्रकाश डाला, जिसका उल्लेख शिलालेखी साहित्य में उपलब्ध है और जिस भाषा को प्राकृत-वैयाकरणों ने भी अपने व्याकरण-ग्रन्थों में स्थान दिया है, जिसकी प्रकृति संस्कृत के सभी नाटकों में सुरक्षित है; उस भाषा की प्रकृति निश्चित ही प्राचीन है। इसलिए श्रद्धेय डॉ० टाँटिया जी ने 'प्रकृतिः शौरसेनी' का कथन करके प्रसुप्तजनों को नया मार्ग दिखलाया।

शौरसेनी मथुरा, शूरसेन से लेकर सुदूर दक्षिण भारत में अपना स्थान बनाने में समर्थ हुई, तभी दक्षिण भारत के आचार्यों में दो हजार पूर्व से इसी भाषा में सिद्धान्त-ग्रन्थों की रचना की। अश्वघोष, कालिदास, भास आदि नाटककारों ने इस भाषा का सबसे अधिक प्रयोग किया। राजशेखर के सट्टक में इस प्राकृत की बहुलता है और अन्य प्राकृत के सट्टकों में इसका भरपूर प्रयोग हुआ है। इस प्राकृत के विषय में डॉ० टाँटिया ने कई महत्त्वपूर्ण निर्देशों के आधार पर इसे प्राचीन प्रमाणित कर निश्चित ही इस प्राकृत की गरिमा का गुणगान किया है। प्राकृतों के कई रूप हैं, उनमें से 'शौरसेनी प्राकृत को भारत की आत्मा' कहकर जो

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सम्मान दिया है, वह इसकी प्राचीनता को अधिक बल प्रदान करनेवाला है।

–डॉ० उदयचन्द्र जैन, विभागाध्यक्ष, *जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग* **

◎ 'प्राकृतविद्या' का प्रत्येक अंक स्वाध्याय के लिए शास्त्र बन रहा है। मार्च '96 के अंक में 'प्रेरक व्यक्तित्व' स्तंभ में मानो डॉ० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य से साक्षात्कार ही करवा दिया है। बनारस में न्यायग्रंथों को पढ़ते समय गुरुमुख से उनके तार्किक पाण्डित्य के किस्से सुना करना था। आज भारतीय मनीषी राहुल सांकृत्यायन के डॉ० महेन्द्र कुमार जी के प्रति उद्‌गार पढ़कर हृदय गद्‌गद हो गया। सम्यक् विद्वत्स्नेह की निर्झरणी यही है। डॉ० मंगलदेव शास्त्री का लेख भी यथार्थ तथ्यपरक है। –डॉ० जिनेन्द्र कुमार जैन, *सासनी (उ०प्र०)* **

◎ आपकी पत्रिका उच्चस्तर की है। इसके खोजपूर्ण सभी लेखों को पढ़कर मुझे बौद्धिक खुराक मिली और भारी प्रसन्नता हुई।

–पं० अमृतलाल शास्त्री, *वाराणसी* **

◎ 'प्राकृतविद्या' अनेकों विषयों में अन्वेषकों, विचारकों एवं विज्ञजनों का भी पथ प्रदर्शन करती है। इसका परिवार बुद्धिजीवी, अन्वेषक एवं सम्पादनकला में समर्थ है।

–डॉ० दयाचन्द्र साहित्याचार्य, *सागर* **

◎ यह संतोष की बात है कि जब शासन की तरफ से माध्यमिक और उच्च शिक्षणों में प्राकृत का स्थान गौण कर दिया है, तब 'प्राकृतविद्या' निकलवाकर आपने जोरदार ढंग से प्राकृत का समर्थन किया है। व्याकरण-साहित्य एवं शोध की दृष्टि से अंक स्तुत्य है। –डॉ० ए०बी० दिगे, प्राचार्य, *वारणा महाविद्यालय* **

◎ 'प्राकृतविद्या' में भारत के विख्यात विद्वानों के शोधलेख, आलोचनात्मक निबंध, काव्य, तत्त्वज्ञान एवं प्राकृतभाषा-साहित्य पर नया प्रकाश पड़ रहा। इससे प्राकृतभाषा के अध्ययन को विश्वभर में बहुमुखी प्रचार मिलेगा। –जे०एस०उपाध्ये, *बालचंदनगर***

◎ 'प्राकृतविद्या' वर्ष 7, अंक 4 मिला। इस सुन्दर एवं स्तरीय प्रकाशन के लिए कुन्दकुन्द भारती-परिवार को बधाई। मुखपृष्ठ का चित्र भव्य है। प्राकृत प्राग्वैदिक भाषा है। –प्रो० खुशालचन्द गोरावाला, *वाराणसी* **

◎ 'प्राकृतविद्या' के इस अंक का आवरण बहुत ही सार्थक और आकर्षक साजसज्जा-युक्त है। मंगलाचरण के साथ ही तीर्थंकर महावीर सम्बन्धी आलेख समयोचित एवं उत्तम लेखनी से निःसृत है। श्रमण-परम्परा पर पूज्य गुरुदेव का लेख शोधपूर्ण है।

–डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल **

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

◎ 'प्राकृतविद्या' के इस अंक के सभी लेख उच्चकोटि के हैं। इस अद्‌भुत प्रकाशन के लिए बधाई एवं धन्यवाद देती हूँ। –प्रो० रचना जैन, *झुंझनूँ (राज०)* ✱✱

◎ प्राकृतभाषा और साहित्य सदृश्य प्राच्यविद्या को इस त्रैमासिकी शोधपत्रिका के माध्यम से अद्यतनीय परिवेश से संयोजित करने का आपका भगीरथ प्रयत्न तत्त्वत: स्तुत्य है। प्राय: सभी निबन्ध सारयुक्त एवं शोधपूर्ण हैं। पत्रिका की साज-सज्जा, कागज एवं मुद्रण आदि सभी अत्यन्त उत्कृष्ट है।

–चन्द्रभूषण झा, *सेंट स्टीफंस कॉलेज, दिल्ली* ✱✱

◎ आपकी लोकप्रिय तथा शौरसेनी प्राकृत एवं साहित्य को उजागर करनेवाली 'प्राकृतविद्या' का नया अंक पढ़ने को मिला। मन को लुभानेवाली इस पत्रिका के द्वारा आचार्यश्री विद्यानन्द जी का अमृतमय चिंतन भी पढ़ने का सौभाग्य मिला।

–डॉ० जैनमति जैन, *आरा (बिहार)* ✱✱

◎ 'प्राकृतविद्या' की सम्पूर्ण सामग्री अत्यन्त रोचक, ज्ञानवर्धक एवं सराहनीय है। इसके संपादक विद्वान् एवं परिश्रमी हैं। इसके विषयों का चयन अद्‌भुत है, जो कि गहन शोधदृष्टि से समन्वित होते हैं। पत्रिका के उत्तरोत्तर नये सांस्कारिक परिवेश के लिए मेरी हार्दिक बधाई।

–आई०के०जैन, प्रभारी, *राष्ट्रिय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन* ✱✱

◎ आपकी लोकप्रिय पत्रिका का नया अंक मिला। आवरण सज्जा एवं छपाई को देखकर विश्वस्तरीय पत्रिकाओं का सा बोध हुआ। इसके बाह्य अलंकरण सुन्दरता के साथ-साथ सार्थकता एवं प्रासंगिकता भी लिए हुए होते हैं। तथा इसमें वर्णित विषय तो अपने आप में अत्यन्त प्रामाणिक, गहन शोधपूर्वक लिखे गये एवं नवीन जानकारियों से भरपूर होते हैं। जैसे कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को अन्य न्यायालयों में प्रमाण-वाक्य के रूप में उद्‌धृत किया जाता है, इस पत्रिका का भी एक-एक वाक्य विद्वानों द्वारा प्रमाण-वाक्य के रूप में उद्‌धृत किया जायेगा - ऐसा मुझे विश्वास है। आशा है आपकी पत्रिका की गौरव-गरिमा इसी तरह दिनों-दिन नये आयाम विकसित करती रहेगी एवं जैनदर्शन व प्राकृतभाषा की कालजयी शोधपत्रिका बनेगी। –लाजपत जैन, *नई दिल्ली*✱✱

◎ 'प्राकृतविद्या' के दो-तीन अंक मेरे देखने-पढ़ने में आये। आकर्षक, प्रेरक आवरण पृष्ठ, त्रुटिरहित मुद्रण के अलावा उत्तम-अभिनव सामग्री पढ़कर बहुत आनन्द आया। –दिलीप धींग जैन, *बांबोरा, उदयपुर* ✱✱

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

समाचार दर्शन

आचार्यश्री विद्यानन्द जी की 72वीं जन्म जयन्ती पर डॉ० दरबारीलाल कोठिया को 'कुन्दकुन्द-सम्मान'

परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज के 72वें जन्म-दिवस 'अमृतोत्सव' के सुअवसर जैनदर्शन-न्याय एवं संस्कृति के मूर्धन्य विद्वान् डॉ० दरबारीलाल जी कोठिया को गाँधी नाथा रंगजी दिगम्बर जैन जनमंगल प्रतिष्ठान, सोलापुर (महाराष्ट्र) को ओर से 'चतुर्थ आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार' ससम्मान भेंट करते हुए उन्हें 'न्याय-सिन्धु' की उपाधि से अलंकृत किया गया। दिनांक 22 अप्रैल '96 को कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली में आयोजित भव्य समारोह में देशभर के कोने-कोने से आये विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में सम्पूर्ण कार्यक्रम अत्यन्त गरिमापूर्ण ढंग से सम्पन्न हुआ।

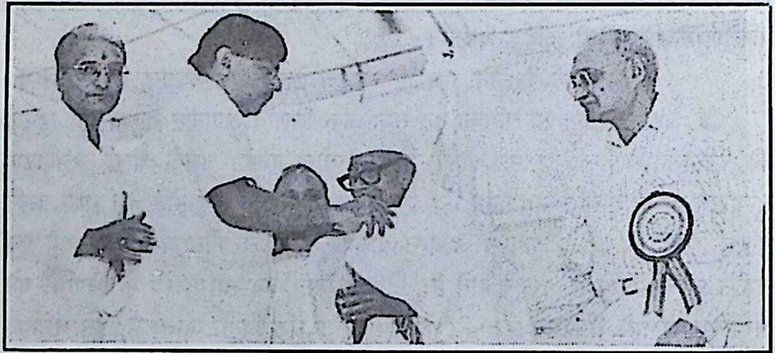

डॉ० कोठिया पुरस्कार-ग्रहण करते हुए

इस सुअवसर पर पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज ने अपने आशीर्वचनों में कहा कि "भारतवर्ष सदा से ज्ञानसाधना के क्षेत्र में विश्वभर का गुरु रहा है। यहाँ के तक्षशिला एवं नालन्दा विश्वविद्यालयों जैसे अध्ययन-केन्द्रों में पढ़ने के लिए विश्वभर से जिज्ञासु आते थे एवं अपनी ज्ञानपिपासा को तृप्त करते थे। यहाँ की 'आन्वीक्षिका विद्या' का महत्त्व तो सम्पूर्ण विश्व ने माना है तथा भारतीय संसद ने भी इसकी उपादेयता को स्वीकार करते हुए कहा है कि यह आन्वीक्षिकी (न्याय) विद्या सभी दार्शनिक मान्यताओं का सहिष्णुता से समावेश करती हुई 'अनेकान्तदृष्टि' की प्रतिष्ठापना करती है।"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आचार्यश्री ने उदाहरणपूर्वक सिद्ध किया कि "प्रत्येक आत्मा का स्वभाव ही अहिंसा है; वह कितना भी दुष्प्रयत्न करे, किंतु कभी भी पूर्णतया हिंसक बन नहीं सकता है।" आज के सम्मानार्ह विद्वान् डॉ० दरबारीलाल जो कोठिया के बारे में बोलते हुए उन्होंने बताया कि "जैनदर्शन एवं न्याय के क्षेत्र में डॉ० कोठिया जी का अन्यतम योगदान है तथा यह प्रसन्नता का विषय है कि वे 85 वर्ष की इस वृद्धावस्था में भी निरन्तर सक्रिय रहकर ज्ञानसाधना एवं समाजसेवा में संलग्न है।" उन्होंने डॉ० कोठिया जी को स्वस्थ एवं सुदीर्घ जीवन के लिए मंगल आशीर्वाद भी दिया।

समारोह के मुख्य-अतिथि पद से बोलते हुए भारत सरकार के विशेष गृहसचिव श्री वी०के० जैन ने अपनी भावभीनी विनयाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा कि "यदि पूज्य आचार्यश्री के विचारों को घर-घर में पहुँचा दिया जाये, तो इस देश में शांति की स्थापना एवं सौहार्द के लिए किसी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रहेगी।" उन्होंने वर्षों पूर्व सहारनपुर में हुए आचार्यश्री के चातुर्मास के प्रभाव का स्मरण करते हुए बताया कि "वहाँ सभी जातियों के आबालवृद्ध नर-नारी आचार्यश्री के प्रवजनों से अभिभूत थे एवं जैनदर्शन के प्रति उनमें अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी।"

समारोह के अध्यक्ष समाज के सर्वमान्य नेता साहू श्री अशोक जैन ने आचार्यश्री के व्यक्तित्व की विराटता एवं चिन्तन की उदारता का उल्लेख करते हुए बताया कि "आचार्यश्री ने देश भर में भ्रमणकर अपनी अमृतवाणी से जन-जन को प्रभावित किया है।" उन्होंने डॉ० कोठिया जी की ज्ञानगरिमा के प्रति भी विनय व्यक्त की एवं उनकी दीर्घायु की कामना की। इन्दौर (म०प्र०) से पधारे सुप्रसिद्ध समाजसेवी पद्मश्री बाबूलाल जी पाटोदी ने कहा कि "पूज्य आचार्यश्री के कारण ही आज मेरा जीवन निष्कलंक है, उन्होंने ही मुझे सच्ची ज्योति प्रदान की है। राष्ट्र की प्राचीन जनभाषा शौरसेनी प्राकृत का प्रचार-प्रसार भी उन्हीं की दिव्य प्रेरणा से हो रहा है। तथा विद्वानों के सम्मान की जो दृष्टि उन्होंने समाज को दी है, उसी से विद्वान् आज महिमामंडित होकर समाज के आदरणीय ही नहीं बने हैं, अपितु उनकी स्थिति में भी गुणात्मक परिवर्तन आये हैं।" डॉ० कोठिया जी को उन्होंने जिनवाणी का सच्चा सेवक बताया।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ०प्र०) के कुलपति डॉ० मण्डन मिश्र, जो कि पूज्य आचार्यश्री के जन्म जयन्ती समारोह में भी सम्मिलित होने के लिए विशेषरूप से वाराणसी से पधारे थे, ने कहा "कि यह देश यदि सुरक्षित है, तो आचार्य विद्यानन्द जी जैसे महान् सन्तों की कृपा एवं सन्देश ही इसमें मूलकारण हैं। इन्होंने जीवन के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठा तो की है, विद्या एवं विद्वानों के सम्मान के बारे में भी जो उदात्त दृष्टि उनकी है; वहाँ तक आज लोगों की कल्पना भी

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नहीं पहुँची है।" श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली के कुलपति प्रो० वाचस्पति उपाध्याय ने कहा कि "आचार्यश्री सदृश सन्तों का जन्म नहीं, आविर्भाव होता है। आचार्यश्री की यह विशेषता है कि उन्हें विद्या, अपरिग्रह एवं वैराग्य में ही आनद मिलता है।"

प्रख्यात समाजसेविका सुश्री निर्मलाताई देशपाण्डे ने कहा कि "भारत की महानता एवं पवित्रता हिमालय जैसे पर्वत एवं गंगा जैसी नदी के कारण नहीं है, अपितु आचार्यश्री विद्यानन्द जी जैसे सन्तों के कारण है।" मूड़बिद्री (कर्नाटक) स्थित जैनमठ के भट्टारक श्री चारुकीर्ति स्वामी जी ने कहा कि "दर्शन-साहित्य, न्याय आदि के क्षेत्रों में अमूल्य योगदान देनेवाले धर्म और संस्कृति के मूल्यों के संरक्षक विद्वानों को सम्मानित कराने का सम्पूर्ण श्रेय पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज को है। आज डॉ० दरबारीलाल कोठिया जैसे सर्वांगीण विद्वान नगण्य रह गये हैं, जिन्होंने अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए देश एवं समाज की सेवा में अपना जीवन समर्पित किया है।"

मुनिश्री कनकोज्ज्वलनंदि जी ने बताया कि "पूज्य आचार्यश्री जैसे ज्ञानगुरु तपस्वी साधक का जन्म आत्मकल्याणपूर्वक विश्वकल्याण के निमित्त होता है, जो उनके जीवन में हम प्रत्यक्ष देखते हैं। विद्या एवं विद्यावानों के प्रति उन निष्ठा एवं अनुराग अतुलनीय है।"

इस अवसर पर कुन्दकुन्द भारतीय शोध संस्थान के निदेशक प्रो० राजाराम जैन ने प्राकृतमय काव्यपाठ कर श्रोताओं का मन मोह लिया। श्री ताराचन्द प्रेमी ने भी आचार्यश्री के प्रति काव्यात्मक विनयांजलि प्रस्तुत की। मगध विश्वविद्यालय के समन्वयक डॉ० नलिन शास्त्री ने भी अत्यन्त परिमार्जित एवं भावपूर्ण शब्दों में अपनी भावाभिव्यक्ति की।

पुरस्कार-समर्पण समारोह के क्रम में सर्वप्रथम डॉ० सुदीप जैन, ने पुरस्कार-प्रदाता संस्था 'गाँधी नाथा रंगजी जनमंगल प्रतिष्ठान, सोलापुर' का एवं पुरस्कार प्राप्त करनेवाले विद्वान् 'डॉ० दरबारी लाल कोठिया' का परिचय देते हुए दोनों की प्राचीनता एवं गरिमा का विवरण प्रस्तुत किया तथा दोनों के पारस्परिक संयोग का 'मणि-कांचन योग' बताया। ध्यातव्य है कि 75 वर्ष पूर्व सोलापुर में प्रतिष्ठापित इस संस्था ने वर्तमान पंडित-परम्परा के कुलगुरु पं० गोपालदास जी बरैया को एवं मुरैना विद्यालय को अनेकविध सहयोग प्रदान किया है तथा आज यह अपनी परम्परा की गरिमा बढ़ाते हुए पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी की पावन प्रेरणा पाकर विगत चार वर्षों से प्रतिवर्ष समाज के वरिष्ठ एवं समर्पित विद्वानों को सम्मानित करती आ रही है। इसीप्रकार स्वनामधन्य विद्वान् डॉ० दरबारीलाल कोठिया भी सन् 1911 ई० में सिद्धक्षेत्र नैनागिरि की पुण्यभूमि पर जन्मे तथा उन्होंने अनेकों कष्ट सहते हुए अपना उच्चतम अध्ययन पूर्णकर समाजसेवा करते हुए अपनी ज्ञानगरिमा से बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय जैसे प्रतिष्ठित शिक्षा-संस्थान का गौरव

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बढ़ाया। आज 85 वर्षों की अवस्था में भी आप अपनी ज्ञानाराधना में तल्लीन हैं एवं अनेकों जटिल ग्रंथों का सम्पादन-अनुवाद आदि कार्य कर रहे हैं। जैनदर्शन एवं न्यायविद्या के एक मिथक बन चुके डॉ० कोठिया जी की पवित्र लेखनी से ऐसे-ऐसे गौरवशाली ग्रन्थों का निर्माण एवं सम्पादन हुआ है, जो कि कालजयी महत्त्व के हैं।

इसी क्रम में गाँधीनाथा रंग जी ट्रस्ट के मंत्री श्री प्रभाचन्द्र शास्त्री ने डॉ० कोठिया को प्रशस्ति-पत्र पढ़कर समर्पित किया। प्रो० वाचस्पति उपाध्याय ने उन्हें तिलक किया, मुख्य अतिथि श्री वी०के० जैन सा० ने उन्हें माल्यार्पण कर शाल उढ़ाया एवं साहू श्री अशोक कुमार जी जैन ने सरस्वती प्रतिमा, प्रतीक चिह्न एवं इक्यावन हजार रुपयों की राशि का ड्राफ्ट ससम्मान भेंट किया।

समारोह के प्रारंभ में श्रीमती प्रभाकिरण जैन का काव्यपाठ हुआ एवं मंगलाचरण आकाशवाणी के कार्यक्रम निदेशक श्री हरिचरण वर्मा ने किया। कार्यक्रम का सफल संयोजन श्री सतीश जैन, बसन्त विहार वालों ने एवं संचालन श्री स्वदेश भूषण जैन ने किया।

इस अवसर पर श्री शीलचन्द जैन जौहरी, श्री कपूरचंद पाटनी, श्री रमेशचन्द जैन (पी०एस०) श्री रत्नकांत फड़े, श्री महावीर देसाई, श्री शरतचंद्र गाँधी एवं पूर्व सांसद श्री डालचन्द जैन आदि अनेकों गणमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे। **

डॉ० मण्डन मिश्र 'सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय' के कुलपति बने

भारत के यशस्वी विद्वान् एवं भारतीय भाषाओं के समर्पित सेवक प्रथम आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार (सेठ लालचन्द दोशी, बम्बई की ओर से) सम्मानित डॉ० मण्डन मिश्र जी भारत के सुप्रतिष्ठित शिक्षण केन्द्र सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति पद पर नियुक्त हो गये हैं एवं उन्होंने दिनाँक २४ अप्रैल को विधिवत् कार्यभार ग्रहण कर लिया है।

आपश्री कुन्दकुन्द भारती की शैक्षणिक प्रवर समिति के अध्यक्ष हैं, एवं कुन्दकुन्द भारती के कार्यों में आपका नैष्ठिक योगदान रहता है। संस्कृत भाषा के भरपूर उन्नयन के साथ-साथ अब आप प्राकृतभाषा की उन्नति एवं विकास के लिए सक्रियरूप से समर्पित हैं।

'प्राकृतविद्या' परिवार की ओर से आपके इस गौरवशाली पद पर प्रतिष्ठित होने पर सादर हार्दिक बधाई एवं उत्तरोत्तर गौरवशाली उपलब्धियाँ आपको प्राप्त हों-एतदर्थ सादर शुभकामनायें। **

महिला महाविद्यालय के नये भवन का शिलान्यास

ब्र० कमलाबाई जी द्वारा श्री महावीर जी क्षेत्र में सन् 1953 में स्थापित शिक्षण संस्था

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ने सन् 1996 ई० में विद्यालय से महाविद्यालय का आकार ग्रहण कर लिया है। मार्च '96 में हुए भव्य समारोह में वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारियों एवं प्रमुख समाजसेवी सज्जनों की गौरवपूर्ण उपस्थिति में यह महान् कार्य सम्पन्न हुआ। महिलाओं में शिक्षा के प्रसार के लिए 20वीं शताब्दी के महान् व्यक्तित्वों में ब्र० कमलाबाई की तपोमय समर्पितवृत्ति सदैव आदरपूर्वक स्मृत की जायेगी। **

डॉ० भागचन्द्र जैन 'भास्कर' को 'कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार'

पालि-प्राकृत-बौद्धदर्शन एवं जैनदर्शन के प्रख्यात विद्वान् तथा नागपुर विश्वविद्यालय में 'पालि एवं बौद्धदर्शन' विभाग के प्रोफेसर पद पर कार्यरत डॉ० भागचन्द जैन 'भास्कर' को वर्ष 1995 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार भव्य समारोहपूर्वक समर्पित किया गया। पू० गणिनी आर्यिका ज्ञानमति जी के पावन सान्निध्य में दिनाँक 13 मार्च '86 को इस कार्यक्रम में देशभर के प्रख्यता मनीषी एवं साधक विद्यमान थे।

डॉ० 'भास्कर' कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार ग्रहण करते हुए

इस पुरस्कार में डॉ० भास्कर जी को पच्चीस हजार रुपये, शाल, श्रीफल, प्रशस्ति-पत्र, प्रतीक चिह्न आदि भेंट किये गये। डॉ० भास्कर जी ने इस राशि में 75,000/- अपनी ओर से मिलाकर एक लाख रुपये के पारमार्थिक ट्रस्ट का गठन की घोषणा की, जिससे निर्धन एवं प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्ति एवं अन्य शैक्षणिक कार्य सम्पादित किये जायेंगे।

डॉ० भास्कर की पुरस्कृत कृति को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ से प्रकाशित किये जाने की भी घोषणा की गयी। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ को कोषाध्यक्ष श्री अजित कुमार सिंह कासलीवाल ने आगामी वर्ष 1997 से इस पुरस्कार की राशि बढ़ाकर एक लाख रुपये करने की घोषणा की।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कार्यक्रम का संयोजन एवं संचालन डॉ० अनुपम जैन ने किया। **

द्विदिवसीय जैनविद्या संगोष्ठी सम्पन्न

इन्दौर में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा दिनांक 12 एवं 13 मार्च '96 को द्विदिवसीय जैनविद्या-संगोष्ठी का आयोजन किया गया। पूज्य गणिनी आर्यिका ज्ञानमति माताजी ने संघ की पावन उपस्थिति में आयोजित इस संगोष्ठी में स्थानीय एवं देशभर से आये हुए लगभग 40 विद्वानों ने पत्रवाचन एवं परिचर्चा में भाग लेकर इसे संपन्न बनाया। इस अवसर पर अर्हत्वचन '94 के पुरस्कार भी समर्पित किये गये।

–डॉ० अनुपम जैन **

नेपाल में जैनमन्दिर

विश्व के एकमात्र 'हिन्दू राष्ट्र' नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में निर्मित जैन एकता के प्रतीक प्रथम जिनमन्दिर का प्रतिष्ठा महोत्सव कल यहाँ विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में पूजा-अर्चना और मंत्रोच्चार के बीच अपूर्व धर्ममय वातावरण में भगवान आदिनाथ, भगवान महावीर, की पूर्तियों को वेदियों में विराजमान करने के साथ विधिवत् सम्पन्न हो गया। आचार्यश्री विद्यानन्दजी महाराज के शुभाशीर्वाद के साथ हूमच व मूडबद्री के भट्टारकद्वय श्री देवेन्द्रकीर्ति स्वामी व श्री चारूकीर्ति स्वामी समस्त समारोह में न केवल उपस्थित रहे, अपितु उन्होंने समस्त विधि-विधान को सम्पन्न कराने में अपना मंगल आंशीर्वाद प्रदान किया। प्रतिष्ठा का कार्य पं० जयकुमार जैन ने कराया। लगभग डेढ़ करोड़ रुपये की लागत और दो सौ शिल्पियों की दो वर्ष की श्रम-साधना से बना संगमरमर का यह भव्य मन्दिर कला की दृष्टि से उत्कृष्ट बन पड़ा है। **

स्वयंभू पुरस्कार-1996

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी (राजस्थान) द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर के वर्ष 1996 के "स्वयंभू पुरस्कार" के लिए अपभ्रंश साहित्य से सम्बन्धित विषय पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में रचित रचनाओं की चार प्रतियाँ 30 सितम्बर, 1996 तक आमन्त्रित हैं। इस पुरस्कार में 11001/- रुपये एवं प्रशस्त्रि पत्र प्रदान किया जायेगा।

नियमावली तथा आवेदन का प्रारूप प्राप्त करने के लिए अकादमी कार्यालय (दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-4) से पत्र व्यवहार करें। वर्ष-95 का स्वयंभू पुरस्कार डॉ० त्रिलोकीनाथ 'प्रेमी' को उनकी कृति "हिन्दी के आदिकालीन रास और रासक काव्यरूप" पर दिनांक 4.4.96 को श्रीमहावीरजी में महावीर जयन्ती के मेले के अवसर प्रदान किया गया।–डॉ० कमलचन्द सोगाणी **

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

महावीर पुरस्कार वर्ष–1996

प्रबन्धकारिणी कमेटी, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित जैनविद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी के वर्ष 1996 के "महावीर पुरस्कार" के लिए जैनधर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से सम्बन्धित किसी भी विषय की पुस्तक/शोधप्रबन्ध की चार प्रतियाँ दिनांक 30 सितम्बर, 1996 तक आमन्त्रित हैं। इस पुरस्कार में 11001/- रुपये एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया जायेगा।

नियमावली तथा आवेदन का प्रारूप प्राप्त करने के लिए संस्थान कार्यालय (दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर–4) से पत्र व्यवहार करें। वर्ष–95 का महावीर पुरस्कार डॉ० कैलाशनाथ द्विवेदी एवं डॉ० उदय सिंह सेंगर को उनकी कृति "नाटककार हस्तिमल्ल" पर दिनांक 4.4.96 को श्रीमहावीरजी में महावीर जयन्त के मेले के अवसर पर प्रदान किया गया। –डॉ० कमलचन्द सोगाणी ✲✲

'प्राकृतभाषा दिवस' पर अनेकों कार्यक्रमों का आयोजन

इस वर्ष 'श्रुतपञ्चमी : प्राकृतभाषा दिवस' के सुअवसर पर 'अखिल भारतीय शौरसेनी प्राकृतविद्वत्संसद' की ओर से कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली के तत्त्वावधान में द्विदिवसीय भव्य कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है, जिनमें प्रथम दिन 21 मई '96 मंगलवार को 'द्वितीय राष्ट्रिय शौरसेनी प्राकृत संगोष्ठी' एवं द्वितीय दिन 22 मई '96 बुधवार को 'अखिल भारतीय शौरसेनी प्राकृत काव्यगोष्ठी' का आयोजन होगा। इन दोनों कार्यक्रमों में देशभर के ख्यातिप्राप्त तीस से अधिक विद्वान् एवं कविगण सम्मिलित होकर कार्यक्रम की श्रीवृद्धि करेंगे। दोनों कार्यक्रमों में पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज एवं पूज्य मुनिश्री कनकोज्ज्वलनंदि जी का पावन सान्निध्य उपलब्ध रहेगा। इस अवसर पर 'श्रुतपञ्चमी पूजन विधान' एवं 'अखिल भारतीय शौरसेनी प्राकृत विद्वत्संसद' का नैमित्तिक अधिवेशन भी आयोजित किया गया है।

डॉ० सुदीप जैन की भेंटवार्ता

आकाशवाणी दिल्ली द्वारा नेशनल चैनल पर राष्ट्रिय प्रसारण के 'विविधा' कार्यक्रम के अन्तर्गत 'प्राकृतभाषा दिवस' पर दिनाँक 21 मई '96 मंगलवार को रात्रि 8.05 बजे विशेष भेंटवार्ता प्रसारित की जायेगी। इसे 246 मी० मीडियम वेव पर सुना जा सकेगा।

प्राकृतविद्या के स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक श्री सुरेशचन्द्र जैन, मंत्री, श्री कुन्दकुन्द भारती, 18 बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-67 से प्रकाशित एवं मुद्रक श्री महेन्द्र कुमार जैन द्वारा, प्रिंटैक्सेल, (फोन-6852255), नई दिल्ली-67 से लेज़र टाइपसैटिंग कराके, जे०के० ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली-6 पर मुद्रित। भारत सरकार पंजीयन संख्या 48869/89

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

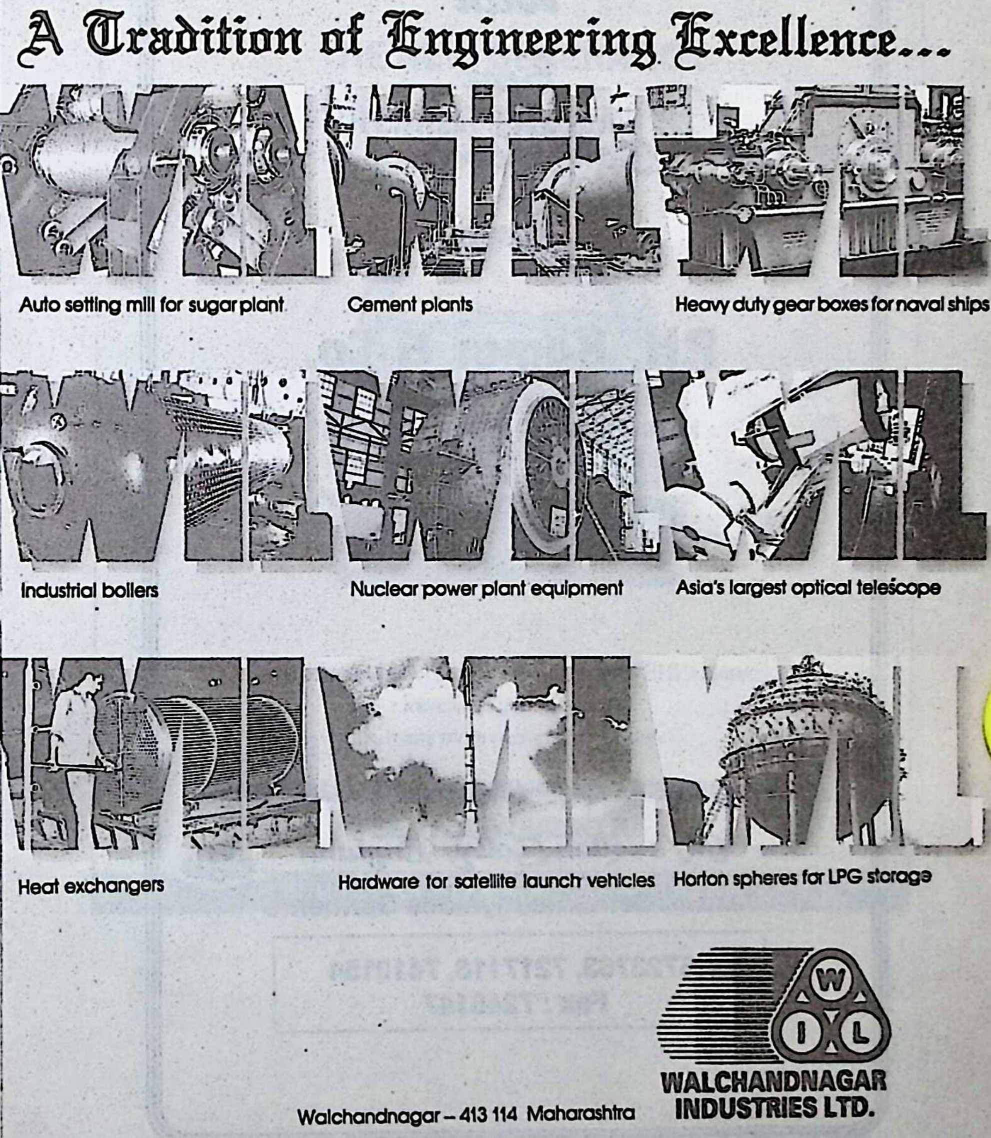

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

With

Best

Compliments

From

P.H. Kumar & Co.

6/18, Ajmal Khan Road
Karol Bagh, New Delhi-110005

Agents For –

M/s Allen Solly, England

Deals in : **Gents Readymade Garments**

☎ 5723763, 7217118, 7410154
Fax : 7246147

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

THE NEW GENERATION

PREMIER PADMINI S1

- Zippier ride. Faster pick up. With a new 48 BHP engine.
- Increased fuel efficiency.
- Plus, many more exciting new features.

MORE VALUE FOR MONEY THAN EVER BEFORE.
SEE FOR YOURSELF.

PAL

THE PREMIER AUTOMOBILES LTD.

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

With best compliments from :

S.C.J. Plastics Ltd.

F-3/10&11, OKHLA INDUSTRIAL AREA PHASE-I, NEW DELHI-110020
HOUSE OF PLASTIC QUALITY PRODUCTS

- MASTERBATCHES FOR LD, HD, HM, PP, PVC FOR MAJOR APPLICATIONS LIKE FILM, INJECTION & BELOW MOULDING, PP FIBERS, TELECOM CABLES & SHOES.
- SPECIAL MASTERBATCHES FOR PS, HIPS, ABS & OTHER ENGG. PLASTICS.
- PROPERTY MASTERBATCHES INCLUDING ANTIFBRILATION & UV ABSORBANTS.
- SPECIAL CABLE COMPOUNDS-FRLS & HALOGEN FREED FLAME RETARDENT ETC.

✆ : 6815566, 6819400, 6818181 FAX : 91-011-6814455

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

क्या साधना जनपद में नहीं हो सकती?
क्या जंगल के एकान्त में ही साधना संभव है?
क्या साधना क्षेत्र भी प्रतिबद्ध है? इसका उत्तर–

थिरकय जोगाणं पुण, मुणीणज्झाणेसु णिच्चलमणाणं।
गामम्मि जणाइण्णे, सुण्णे रण्णे य ण विसेसो।।

—आचार्य वीरसेन धवला पु० 13/18

अर्थ—जिन्होंने अपने योगों को स्थिर कर लिया है तथा जिनका मन निश्चल है, ऐसे मुनिराजों के लिए मनुष्यों से व्याप्त जनपद, ग्राम और शून्य जंगल में कोई अन्तर नहीं है।

Exporters of Hi-fashion Garments & Accessories

Manish Jain
K-3 Green Park Main Ist Floor.
New Delhi –110 016
Tel.: 91-11-6858973, 6858974
Fax No.: 91-11-6854610

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

With Best Compliments From

Surendra Kumar
Sandeep Kumar Jain

B-499, New Friends Colony
New Delhi-110065
Phones : 6834421, 6843621

Proprietors

- ***THE PARAS WOOD PRODUCTS***
  Mfrs. Sewing Machine Wood Work,
- *PARAS Appliances*
  Mfrs. Water Geysers & Room Coolers
- *Home Appliances*
  Mfrs. A.C.-D.C. F.H.P. Electrio Motors

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

भाव सनातन और सार्वभौमिक है—भावों को केवल विभिन्न भाषाओं में ही अभिव्यक्त किया जाता है और हमारे भाषाई वैविध्य में जो एक उल्लेखनीय तथ्य है वह है—अन्य भाषाओं से लाये गये शब्द और एक सहज तत्परता से इनका हमारी भाषाओं में घुल-मिल जाना, समाहित हो जाना। यदि किसी भी भाषा को कायम रहना है, फैलना है और फलना-फूलना है, तो व्यापक स्तर पर पारस्परिक व्यवहार, आदान-प्रदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है—अभी बहुत कुछ हासिल किया जाना है।

☆

भाषा की एक सांझी आत्मा है, इसे जीवन्त बनाये रखिये।

☆

नवभारत टाइम्स प्रकाशन-समूह

की

शुभकामनाओं सहित

☆ ☆ ☆

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

With Best Compliments

from

Siddharth Interiors

INTERIOR DESIGNERS & FURNISHERS

25, Panscheel Park, Shopping Complex,
New Delhi - 110017.
Tel.: 6442075, 6460803

**HIGH CLASS INTERIORS
WITH DESIGN PACKAGE
FOR RESIDENCES, OFFICES,
FARM HOUSES, VILLAS ETC.**

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शुभ कामनाओं सहित :

सब मॉडल
हमेशा उपलब्ध !
तुरन्त डिलीवरी
केवल गौतम पर

50% दीजिए
शेष ब्याज फ्री
6 किश्तों में
बिना गारन्टर

bajaj

100% फायनान्स
@ 9.5% p.a. (flat)
(बी ए एफ एल द्वारा)
(रविवार खुला है)

बिक्री कर
केवल 6%
बचाएं रु. 800/- तक

चेतक, चेतक मेटैलिक, सुपर, सुपर FE,
सनी, कावासाकी बजाज मोटर साइकिल

पूरी जानकारी के लिए सम्पर्क करें:

गौतम ऑटो मोटर्स

स तिलक नगर : 4ए/4, नजफगढ़ रोड, पानी की टंकी के पास, फोन : 5455310, 593386
स ओखला फेस-2 : ई-41/6, इण्डस्ट्रियल एरिया, फोन : 633284, 6841156
स आर.के.पुरम : रिंग रोड, भीकाजी कामा प्लेस, फोन : 672197, 673298
स राणा प्रताप बाग : बी-81, जी.टी. करनाल रोड, इण्डस्ट्रियल एरिया, फोन : 7218240, 7113408

बजाज की शान ~ गौतम के साथ

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

'विजने जनसंकीर्णे, सुस्थिते दु:स्थितेऽपि वा।
सर्वत्राप्रतिबद्धः स्यात्संयमी संगवर्जितः।।'

—आचार्य शुभचंद्र, ज्ञानार्णव 16/34

अर्थ—भीड़ हो अथवा निर्जन स्थान हो, अच्छी या बुरी कैसी भी स्थिति हो; जो संयमी निसंग पुरुष हैं, वे प्रत्येक परिस्थिति में अप्रभावित रहकर आत्मसाधना में लीन रहते हैं।

परमपूज्य आचार्य श्री विद्यानन्द मुनि

BR

भारत रेडिएटर्स लिमिटेड

ऑफिस.
८१. बजाज भवन
नरिमन पॉइट.
मुंबई–४०००२१
दूरभाष: २०२००८५/२०२१४२७
ग्राम: : स्मूथरन
टैलेक्स : ०११-४६६१

फैक्टरी
विद्यानगरी मार्ग
सांताक्रुज (पूर्व)
मुंबई–४०० ०९८
फोन: ६१२२९६५/६१२३४५७
ग्राम : प्रैसवर्क

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy: Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ग्रामेऽरण्यमिति द्वेधा, निवासोऽनात्मदर्शिनाम्।
दृष्टात्मानां निवासस्तु, विविक्तात्मैव निश्चल:।।

—आचार्य पूज्यपाद, समाधितन्त्र 73

अर्थ—जो अनात्मदर्शी संसारी प्राणी हैं, वे गाँव अथवा जंगल में निवास करने में भेददृष्टि रखते हैं; किन्तु जो आत्मदर्शी साधक हैं, वे पर से विभक्त निजशुद्धात्मतत्त्व में ही निश्चलरूप से निवास करते हैं।

With Best Compliments From :

Manufactures

PAPER & BOARD
COLOURED TRIPLEX FILE BOARD

Magnum Paper (P) Ltd.
18/31, Site No.4. Sahibabad (U.P.) Tel.: 8770421

Delhi Paper Co.
685, Chitla Gate, Chawri Bazar Delhi-6 Tel.: 3264503, 3261179

Res.: 3/4326, Ansari Road, Darya Ganj, New Delhi-110002
Tel.: 3265375, 3267209

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

With Best Compliments

From

Padma Gems Jewellers

9-A SUNDER NAGAR MARKET,
NEW DELHI-110003, INDIA

TEL.: 4611513, 4611202
FAX: 91-11-4627513

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

किसी पत्र पत्रिका में
छोटा सा स्थान

साथ ही थोड़ा सा
हमारा योगदान

परिणाम ?
एक भविष्य महान

Sharad Advertising Pvt. Ltd.

96, Rashid Market, Delhi-110051
Ph: 2212364, 2249547, 2247589 Fax: 2228308

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

A NAME TO RECKON WITH
IN RIGID P.V.C. PIPES

IS : 4985
ISI

JAYCO

JAYCO PIPES PVT. LTD.
Works : 58/3. Site IV. Industrial Area. Sahibabad. Ghaziabad
U.P. 201010 Ph. : 8770932-33
Regd. Office : E-11, Krishan Nagar. Delhi-110051
Ph. : 2203831. 2243831. FAX 2226831

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शुभकामनाओं सहित

पी०आर०जे० इन्टरप्राइज़र्स

अधिकृत विक्रेता :
(सेल-सर्विस-स्पेयर्स)

पाल प्रीमियर लिमिटेड

(उनो, प्रीमियर पद्मिनी एवं प्रीमियर डीजल कार)

शोरूम :
ए-5, नजफगढ़ रोड़, कीर्ति नगर (छोटेलाल पार्क)
नई दिल्ली-110015

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

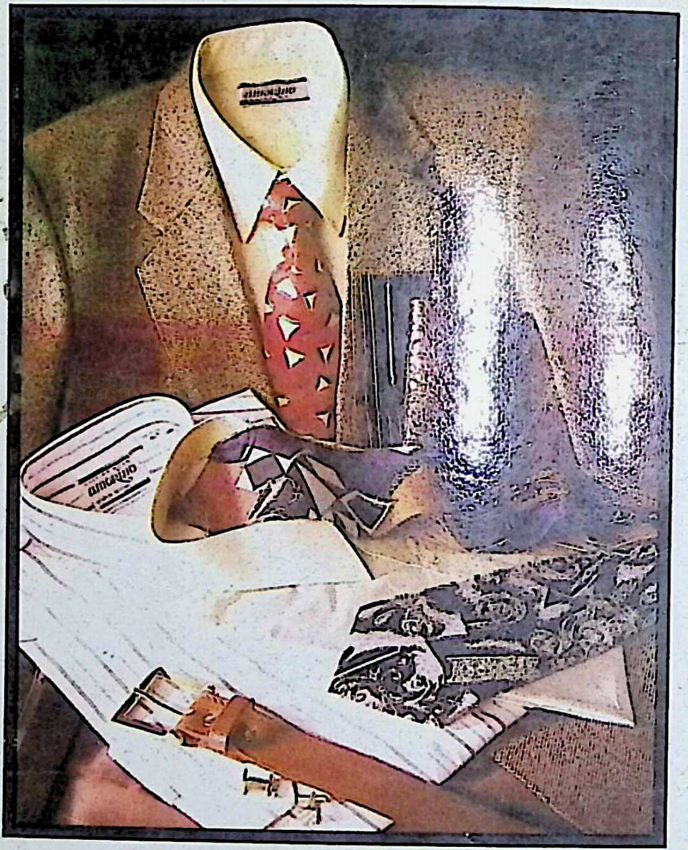

A treasure trove of shopping. A delight for the family with a sweep of tantalizing Readymades, Gifts, Novelties, Tempting Household Linen, Made-ups, Accessories Handicrafts, Watches and Jewellery.

amorino™

PERFECT SHOPPING

EIC HOUSE, HAUZ KHAS, AUROBINDO MARG, NEW DELHI-110016

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji